# गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ

•

सम्पादक
सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री
पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ
पं० जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री
प्रो० दरबारीलाल कोठिया आचार्य
डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, डी० लिट्

•

प्रकाशक
अ० भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद्

प्रकाशक
मंत्री, अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद्

◆

प्राप्ति-स्थान
मंत्री अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्
कार्यालय, वर्णीभवन,
सागर ( म० प्र० )

◆

मुख्य-वितरक
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला,
चमेली-कुटीर,
डुमरावबाग, अस्सी, वाराणसी–५

◆

प्रथम संस्करण
१९६७
मूल्य बीस रुपये

◆

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस,
बी० २०/४४, भेलूपुर, वाराणसी-१

स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति गुरुवर्य गोपालदासजी बरैया

# समर्पण

प्रथम जन्म की शती तुम्हारी, प्रथम तुम्हारी अर्चा;
जग-जीवन के श्वास श्वास में, दिव्य तुम्हारी चर्चा।
स्याद्वादाम्बुधि ! देव ! वादिगज-कण्ठीरव ! बुधवन्दित;
शिष्य-प्रशिष्य जनों की कृति यह, सादर तुम्हें समर्पित ॥

# प्रकाशककी ओरसे

स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेशरी, न्यायवाचस्पति श्रीमान् पं० गोपालदासजी वरैयाके असीम उपकारोंसे जैन समाज अत्यन्त उपकृत है। जिस समय जैन समाजमें एक भी विद्यालय ऐसा न था, जो जैन सिद्धान्तके उच्चतम ग्रन्थोंके पठन-पाठनकी व्यवस्था कर भगवान् महावीर स्वामीकी दिव्य देशनाका प्रसार कर रहा हो, उस समय स्वान्तःकरणकी प्रबल प्रेरणासे वरैयाजीने किसी गुरुकी सहायताके बिना ही स्वाध्याय द्वारा अपने ज्ञानको इतना वृद्धिगत कर लिया था कि वे विद्वत्परम्पराके स्वयंबुद्ध गुरु हो गये। वे अप्रतिम प्रतिभा और अपरिमित वाक्कौशलके धनी थे। उन्होंने उच्चकोटीके धर्मग्रन्थोंके पठन-पाठनको प्रारम्भकर जैनसिद्धान्तके ज्ञाता वर्तमान विद्वानोंकी पीढ़ीको जन्म दिया। आपकी शिष्यपरम्परामें आज ऐसे विद्वान् हैं जो उच्चकोटीके साहित्य निर्माता, व्याख्याकार, कुशलवक्ता एवं सुलेखक माने जाते हैं। आपने अपना व्यापारिक कार्य करते हुए निःस्वार्थभावसे स्थान-स्थानपर जाकर जैन सिद्धान्तकी दुन्दुभि बजाई थी तथा अजमेरमें आर्यसमाजसे शास्त्रार्थकर जैनधर्मकी विजय-वैजयन्ती फहराई थी।

इस लोकोत्तर विभूतिके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्तव्य समझकर भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्ने अपने सिवनी अधिवेशनमें निम्नाङ्कित प्रस्ताव पारित किया था—

"वर्तमान विद्वत्समाजके साक्षात् या परम्परा विद्यागुरु गोपालदासजी वरैयाका न केवल विद्वत्समाज पर किन्तु समस्त जैन समाजपर महान् उपकार है। आगामी चैत्र कृष्ण १२ वि० सं० २०२३ में उनकी सौवीं जयन्ती आनेवाली है अतः विद्वत्परिषद् उस अवसरपर पूज्य गुरुजीकी जन्मशताब्दी मनानेकी समाजसे अपील करती है तथा गुरु गोपालदास जन्मशताब्दी स्मारिका प्रकाशित करनेका संकल्प करती है और विद्वानोंसे उसमें सहयोगका अनुरोध करती हुई उसके संपादनार्थ निम्नलिखित विद्वानोंकी उपसमिति नियुक्त करती है—

१. श्री पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जयपुर
२. श्री पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, वाराणसी
३. श्री डा० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट्, आरा
४. श्री पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्य, एम० ए०, वाराणसी
५. श्री पं० जगमोहनलालजी शास्त्री, कटनी

उक्त प्रस्तावके अनुसार शताब्दी समारोह मनाने और श्री गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करनेकी योजनाका प्रसार समाजमें किया गया। प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि समाजने इन दोनों योजनाओंको क्रियान्वित करनेमें अच्छी अभिरुचि दिखलाई। उस अभिरुचिके अनुरूप ही इस स्मृति ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है। इस ग्रन्थमें पूज्य वरैयाजीसे सम्बद्ध जैन समाजका तत्कालीन इतिहास, उनके साहित्यका परिचय तथा उनके लेखों आदिका संकलन तो है ही, उसके साथ धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास तथा पुरातत्व आदि विषयों पर उच्चकोटीके लेखकोंके द्वारा लिखित श्रेष्ठ लेखोंका संकलन भी है। इस ग्रन्थके संपादनमें श्रीमान् सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, प्रधानाचार्य स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, डा० नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य, एम०ए० पी० एच० डी०, डी० लिट् संस्कृत प्राकृत विभागाध्यक्ष हरप्रसाद दास जैन कालेज आरा तथा पं० दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य, प्राध्यापक जैनदर्शन, काशी विश्वविद्यालयने पर्याप्त श्रम किया है तथा उपसमितिके अन्य विद्वानोंने भी यथाशक्य सहकार दिया है। इसके लिये भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद् की कार्यकारिणी इन विद्वानोंके प्रति नम्र आभार प्रदर्शित करती है। जिन विद्वानोंने अपने लेख तथा श्रद्धाञ्जलियाँ भेजकर ग्रन्थकी गरिमा बढ़ाई है और जिन विद्वानों तथा धीमानोंने औदार्यपूर्ण आर्थिक सहयोग देकर इसकी प्रकाशन व्यवस्थाको सुकर बनाया है उन सबके प्रति विद्वत् परिषद्की कार्यकारिणी हार्दिक आभार प्रकट करती है। किसी भी सम्पादक या लेखकने पारिश्रमिकके रूपमें एक पैसा भी नहीं लिया है। आर्थिक सहयोग दाताओंकी सूची अलगसे दी गई है।

उसी सिवनी अधिवेशनमें यह प्रस्ताव भी पारित किया गया था कि उच्चकोटीके साहित्य निर्माणको प्रेरणा देने तथा सुलेखक विद्वानोंका सम्मान करनेके लिये प्रति दो वर्षोंमें एक-एक हजार रुपयोंके 'वरैया पुरस्कार' और 'वर्णी पुरस्कार' चालू किये जावें। प्रकट करते हुए हर्ष होता है कि इस कार्यके लिये श्रावकशिरोमणि दानवीर साहु शान्तिप्रसाद

जीकी ओरसे १०००) वार्षिकका आर्थिक सहयोग विद्वत्परिषद्के लिये प्राप्त हुआ है तथा निश्चयानुसार प्रथम बरैया पुरस्कार इस वर्ष दिया जा रहा है। अग्रिम वर्ष वर्णी पुरस्कार दिया जावेगा। इस औदार्यपूर्ण सहयोगके लिये भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद् साहूजीके प्रति नम्र आभार प्रदर्शित करती है।

स्मृति ग्रन्थ सिर्फ ८०० छपाये गये हैं। आर्थिक सहयोग कर्ताओं, लेखकों तथा सम्माननीय व्यक्तियोंको समर्पित करनेके बाद शेष ग्रन्थोंकी बिक्रीसे जो द्रव्य वापिस आवेगा उसे बरैया स्मारक निधिमें जमा किया जावेगा और इसकी आयसे कार्यकारिणीकी आज्ञानुसार साहित्य प्रकाशन आदि कार्य किये जावेंगे।

अन्तमें महावीर प्रेसके मालिक श्रीबाबूलालजी फागुल्लके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने सीमित समयमें सुन्दर रीतिसे इस ग्रन्थका प्रकाशन किया है।

सागर
चैत्र कृष्णा १२, वि० सं० २०२३
वी० नि० २४९४

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य
मंत्री
भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्
( कार्यालय-वर्णीभवन, सागर )

# सम्पादकीय

**ज्ञानी के पूजन-वन्दन में, सदा ज्ञान की पूजा होती।**
**ज्ञानी की वाणी से झेले अम्ल ज्ञान के मोती ॥**

सौन्दर्य और उपयोगिताको भावनाने रागात्मक अभिव्यञ्जनाके क्षेत्रको इस वर्त्तमान युगमें पर्याप्त विस्तृत किया है और इस विस्तारभावनाके फलस्वरूप साहित्य जगत्में रिपोर्ताज, वैयक्तिक निबन्ध, अभिनन्दन-ग्रन्थ एवं स्मृति-ग्रन्थ आदि नयी विधाओंका प्रादुर्भाव हुआ है। अभिनन्दन अथवा स्मृति-ग्रन्थ प्राचीन किस साहित्य-विधासे सम्बद्ध हैं, इस प्रश्नका उत्तर सन्तोषजनक नहीं मिलता। बारहवीं और तेरहवीं शताब्दिमें कुछ ऐसे प्रबन्ध संग्रह लिखे गये, जो एक प्रकारसे अभिनन्दन या स्मृतिग्रन्थोंकी पूर्वज साहित्यविधाके अन्तर्गत समाविष्ट हो सकते हैं। संस्कृतके क्रोड-पत्र भी प्रकारान्तरसे अभिनन्दन ग्रन्थोंके पूर्वरूप माने जा सकते हैं, अतएव अभिनन्दन या स्मृतिग्रन्थोंकी वर्त्तमान परम्परा प्राचीन प्रबन्ध-संग्रहका नया चोला धारण कर अभिनवरूपमें प्रस्तुत हुई है। सत्य यह है कि मानवताका इतिहास केवल स्थूल जगत्के उपकरणोंसे निर्मित नहीं होता; उसपर अन्तर्जगत्का भी प्रभाव पड़ता है, जिससे भव्य-भावनाएँ और ललित कल्पनाएँ शत-शत रूप धारण कर प्रकाश पुञ्जोंकी भाँति जगमगाती रहती हैं, तथा जीवनकी आकाश गंगामें सौन्दर्य-कमल विकसित हो, समाजके लिए नये मूल्याङ्कन स्थापित करते हैं। समाज व्यक्तिके व्यक्तित्वमें गुणविस्तार भावनाका आरोप कर व्यक्तिके द्वारा गुणोंकी मान्यता प्रतिष्ठित करता है। इसीके फलस्वरूप अभिनन्दन या स्मृति-ग्रन्थोंका प्रणयन इस बीसवीं शताब्दिमें होता आ रहा है।

'गुणाः पूजास्थानं'का जीवन-मूल्याङ्कन सम्बन्धी सिद्धान्त बहुत पुराना है। सेवा, दान, शिक्षा, साहित्य-प्रणयन, संयम, त्याग ऐसे जीवनमूल्य हैं जिनके सद्भावसे व्यक्तिके व्यक्तित्वको भी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। त्याग और सेवाके समक्ष सामान्य हृदयकी तो बात ही क्या, क्रूर और कठोर हृदयको भी झुकना पड़ता है। फलतः जिन पुण्य-व्यक्तियोंने अपने जीवनमें त्याग और सेवाके कार्य सम्पन्न किये हैं, अपनी महत्त्वाकांक्षाओंको समाज या देशकी महत्त्वाकांक्षाओंके रूपमें परिवर्तित कर दिया है, ऐसे व्यक्तियोंका सम्मान कर हृदयको सन्तोष और शान्ति प्राप्त होती है। निश्चयतः कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनका आदान भी समाज निर्माणके लिए ही होता है। जीवन या समाजोत्थानके लिए वे कतिपय नये प्रतिमानोंकी स्थापना करते हैं जिन प्रतिमानोंका उत्तरवर्त्ती समाज अवलम्बन कर अपने कार्यकलापोंको स्वस्थ और सबल बनाता है, साथ ही भावी समाजके हेतु जीवनमूल्योंका संशोधन प्रस्तुत करता है। अतः पूज्य, त्यागी, सेवाभावी, ज्ञानी एवं अन्य महत्त्वपूर्ण गुणोंसे युक्त व्यक्तिका सम्मान सत्कार करना मानवताको शाश्वतिक बनाये रखनेका एक लघुतम उपाय है।

जहाँ तक हमें स्मरण है, हिन्दी साहित्यमें सर्वप्रथम अभिनन्दन ग्रन्थ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीको उनके त्याग और सेवाओंके उपलक्षमें समर्पित किया गया। इसके पश्चात् तो 'हरिऔध-अभिनन्दन ग्रन्थ', 'राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ', 'नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ' आदि शतशः अभिनन्दन ग्रन्थोंकी परम्परा चली है। जैन समाजमें प्रेमी अभिनन्दन-ग्रन्थके पश्चात् वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ, चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, सेठ हुकुमचन्द अभिनन्दन-ग्रन्थ आदि कई अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। स्मृति ग्रन्थोंमें महावीर स्मृतिग्रन्थ, भिक्षु-स्मृतिग्रन्थ, मुनि हजारीमल स्मृतिग्रन्थ, तनसुखराय स्मृतिग्रन्थ प्रभृति स्मृतिग्रन्थोंकी भी परम्परा उपलब्ध है।

गुरु गोपालदास त्यागी, कर्मठ, नैष्ठिक, सत्यशोधक, विद्वान् कुशलवक्ता, सुलेखक एवं युगनिर्माता तथा सफल अध्यापक थे। उनकी ज्ञानज्योतिको प्राप्त कर ही आज जैन विद्याके ज्ञाता विद्वान् दिखलायी पड़ रहे हैं। वे ऐसे प्रकाश-पुञ्ज थे जिन्होंने अपने आलोकसे समाजकी सभी दिशाओंको भर दिया। उन पारसमणिका स्पर्श पा कितने सोना बन गये। अतएव इस शताब्दिके परोपकारी गुरु गोपालदास की स्मृतिको धरोहरके रूपमें संजोए रखना प्रत्येक सदस्यका सामाजिक दायित्व है।

फरवरी १९६५ में सिवनीमें पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसर पर व्याकरणाचार्य पण्डित बंशीधरजी शास्त्री, बीनाकी अध्यक्षतामें दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशनमें सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, वाराणसीने गुरु गोपालदासके महनीय कार्यों और सेवाओं पर प्रकाश डालते हुए गुरु गोपालदास शताब्दि समारोह

मनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ। इस प्रस्तावका एक अंश गुरुजीकी सेवाओंके उपलक्ष्यमें 'स्मारिका' प्रकाशित करनेका भी था। उक्त 'स्मारिका' के सम्पादन हेतु एक सम्पादक-मण्डल सुगठित किया गया।

दिसम्बर १९६५ में दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्की कार्य समिति की बैठक वाराणसीमें सम्पन्न हुई। इसी अवसर पर 'स्मारिका' के सम्पादक मण्डलकी भी बैठक हुई। उक्त बैठकमें निश्चय किया गया कि गुरु गोपालदासजीके व्यक्तित्व और सेवाओंकी तुलनामें स्मारिकाका प्रकाशन बहुत ही हलका पड़ेगा, अतएव एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय, जो गुरुजीकी सेवाओंके अनुरूप हो। इस स्मृतिग्रन्थकी रूपरेखाके निर्माणका भार डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, आराको सौंपा गया। फलतः उन्होंने शीघ्र ही एक रूपरेखा सम्पादक मण्डलके समक्ष प्रस्तुत की, जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत की गयी और जिसका प्रकाशन तथा वितरण आरासे किया गया। यह रूपरेखा ६ खण्डोंमें विभक्त थी—

१. जीवन परिचय, संस्मरण और श्रद्धाञ्जलियाँ।
२. गुरु गोपालदासजीके निबन्ध, कार्य-प्रवृत्तियाँ एवं उनकी रचनाओंका अनुशीलन।
३. जैन समाजका एक सौ वर्षोंका इतिहास और गुरुगोपालदासजीकी उसको देन।
४. धर्म और दर्शन।
५. साहित्य और संस्कृति।
६. इतिहास, पुरातत्त्व और कला।

उक्त रूपरेखाके आधार पर विद्वानोंसे संस्मरण, निबन्ध, श्रद्धाञ्जलियाँ आदि भेजनेके लिए अनुरोध किया गया। प्रायः समस्त विद्वद्वर्गने उस रूपरेखाका स्वागत किया और अपनी रचनाएँ भेजनेका आश्वासन भी दिया।

विद्वत्परिषद्के कार्यालयसे धीमानों द्वारा आर्थिक सहयोग प्राप्त करनेकी विज्ञप्ति प्रकाशित की गयी। इस विज्ञप्तिके फलस्वरूप समाजके गणमान्य श्रीमान् उदारदानियोंने आर्थिक सहायता प्रेषित की।

इस प्रकार धीमन्त और श्रीमन्त दोनोंका सहयोग हमें इस स्मृति-ग्रन्थके प्रकाशनमें प्राप्त हुआ। कई महानुभावोंने तो हमारे इस कार्यकी पर्याप्त प्रशंसा की जिससे हमें इस कार्यके सम्पन्न करनेमें कई गुना उत्साह प्राप्त हुआ।

स्मृति-ग्रन्थ सम्बन्धी सामग्रीके सङ्कलनके अनन्तर जब उसका वर्गीकरण किया जाने लगा, तो निर्धारित रूपरेखाके अनुसार उक्त षट्खण्डोंकी सामग्री अत्यल्प दिखलायी पड़ी। फलतः सम्पादक मण्डलने प्राप्त सामग्रीको निम्नलिखित चार वर्गोंमें विभक्त किया—

१. सन्देश, सन्तोंके आशीर्वाद, जीवन-परिचय, संस्मरण, एवं श्रद्धाञ्जलियाँ।
२. प्रवृत्तियाँ, विचार, गुरुजीके स्फुट निबन्ध एवं उनकी रचनाओंका अनुशीलन।
३. धर्म और दर्शन।
४. साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति।

प्रथम खण्डकी सामग्रीके सङ्कलन-हेतु पर्याप्त प्रयास करना पड़ा है। यद्यपि इस खण्डकी जीवन-परिचय और संस्मरण सम्बन्धी कुछ सामग्री श्री कपूरचन्द जैन वरैया, एम० ए० लश्कर (ग्वालियर) ने संकलित की है। उन्होंने अपनी इस सङ्कलित सामग्रीको श्रीमान् पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनीको प्रकाशनार्थ सुपुर्द किया था। लश्करमें सम्पन्न होनेवाली गुरु गोपालदास वरैया जयन्तीके अवसर पर उक्त पण्डितजीकी अध्यक्षतामें 'स्मारिका' प्रकाशित करनेका प्रस्ताव हुआ था। इसी प्रस्तावके आधार पर श्रीमान् पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री उक्त सामग्रीको अपने पास प्रकाशनार्थ सुरक्षित रखे हुए थे; पर जब विद्वत्परिषद्के सभा-मञ्चसे ग्रन्थ प्रकाशनका प्रस्ताव पारित हुआ, तो उन्होंने उक्त सामग्री श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, सिद्धान्ताचार्य वाराणसीको सौंप दी। विद्वानों एवं गणमान्य व्यक्तियोंसे सन्देश शुभकामनाएँ एवं श्रद्धाञ्जलियाँ एकत्र करनेमें डा० नेमिचन्द्रजी शास्त्रीने पर्याप्त श्रम किया। जो सामग्री श्री कपूरचन्दजी द्वारा सङ्कलित की गयी थी, उसका भी यथेष्ट सम्पादन कर उसे नया ही रूप दे दिया गया।

द्वितीय खण्डकी सामग्रीके सङ्कलनमें जैन-मित्र, जैन-गजट एवं अन्य प्राचीन पत्र-पत्रिकाओंसे यथेष्ट सहायता ग्रहण की गयी है। गुरु गोपालदासजीके जो फुटकर निबन्ध 'जैन हितैषी' एवं 'जैनमित्र' आदि पत्रिकाओंमें तथा पृथक् ट्रैक्टके रूपमें प्रकाशित हुए थे, उनका चयन बड़ी ही सतर्कतापूर्वक किया गया है। जिन निबन्धों और रचनाओंमें गुरुजीने बड़े-बड़े सैद्धान्तिक विषयोंको संक्षेपमें निबद्ध किया था; उन्हीं निबन्धोंको इस ग्रन्थमें प्रकाशित किया गया है। गुरुजीके ये निबन्ध किसी एक स्थानपर उपलब्ध भी न थे। अतः उपयोगिताकी दृष्टिसे इन निबन्धोंका मूल्य अनल्प है। गुरुजीकी कार्य

प्रवृत्तियाँ बहुमुखी थीं, उन्होंने साहित्य-सृजन, शिक्षा-प्रचार, धर्म-प्रचार, समाज-जागरण, परीक्षालय-स्थापन आदि अनेक कार्योंको अपने अल्प-जीवनमें ही सम्पन्न किया। वास्तवमें गुरुजी व्यक्ति नहीं एक संस्था थे। उनके समस्त कार्यों और प्रवृत्तियोंका मूल्याङ्कन प्रस्तुत करना सामान्य कार्य नहीं। अतएव सम्पादकमण्डलने उनकी विभिन्न कार्य-प्रवृत्तियोंको संक्षेपमें सङ्कलित करनेका आयास किया है।

गुरुजीकी बड़ी रचनाओंमें तीन ग्रन्थ ही उल्लेख्य हैं—(१) सुशीला उपन्यास (२) जैनसिद्धान्त दर्पण एवं (३) जैनसिद्धान्त प्रवेशिका। इन तीनों रचनाओंका अधिकारी विद्वानों द्वारा अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। इस अनुशीलनसे गुरुजीकी सृजनात्मक प्रज्ञाका भलीभाँति परिचय प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि गुरु गोपालदासजी सभी दृष्टिकोणोंसे युगनिर्माता थे। उनकी रचनाएँ भी दर्शन, धर्मशास्त्र कथात्मक-प्रज्ञाकी सूचक हैं।

तृतीय खण्ड धर्म और दर्शन संज्ञक है। इस खण्डमें जैन-धर्म और जैनदर्शन सम्बन्धी बाईस निबन्ध सङ्कलित हैं। इन निबन्धोंमेंसे कई निबन्ध मौलिक विचारपूर्ण सामग्रीसे युक्त हैं। सम्पादक-मण्डलने विशेषतया डा० नेमिचन्द्रजी शास्त्रीने इस तृतीय खण्डके निबन्धोंके सङ्कलनमें पूरा प्रयास किया है। डा० रामजीसिंहके 'ज्ञानकी सीमा और सर्वज्ञताकी सम्भावना' शीर्षक निबन्धमें एक विचारणीय प्रश्न आया है। इस प्रश्न पर चिन्तकोंको अवश्य ऊहापोह करना चाहिये। प्रश्न है कि जैन तार्किक समन्तभद्रने सर्वज्ञसिद्धिके लिए 'अनुमेयत्व' हेतु दिया है और अकलङ्कने 'प्रमेयत्व' हेतु। इन दोनों हेतुओंके प्रयोगमें कुछ अन्तर है या नहीं। निबन्ध लेखकने समन्तभद्रके हेतुकी अपेक्षा अकलङ्कके प्रमेयत्व हेतुको अधिक तर्कसङ्गत माना है। उनका अभिमत है कि हेतु ऐसा होना चाहिये, जो वादी, प्रतिवादी दोनोंको मान्य हो। अनुमेयत्व हेतु सर्वज्ञत्वके प्रतिवादी मीमांसकको मान्य नहीं; क्योंकि मीमांसक समस्त पदार्थोंका अवगम आगमसे मानता है, अनुमानसे नहीं। इसी प्रकार सर्वज्ञका प्रतिपक्षी चार्वाक भी अनुमानको प्रमाण नहीं मानता। अतएव इन दोनों प्रतिपक्षियोंकी दृष्टिमें 'अनुमेयत्व' हेतु अमान्य है। इस प्रकार समन्तभद्रका अनुमेयत्व हेतु वादीको तो सिद्ध है, पर प्रतिवादियोंको नहीं। अकलङ्क देव द्वारा प्रयुक्त प्रमेयत्व-हेतु वादी और प्रतिवादी दोनोंको ही मान्य है। समस्त सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ प्रमेय हैं और प्रमेय होनेसे वे किसीके भी प्रत्यक्ष हो सकते हैं। जैसे घट पट आदि पदार्थ प्रमेय होनेसे हमारे प्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार लेखकने विचारके लिए कुछ नये प्रश्न उपस्थित किये हैं।

'देवागमका मूलाधार' शीर्षक निबन्धमें प्रो० दरबारीलाल कोठियाने 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' मङ्गलश्लोकको आचार्य गृद्धपिच्छ द्वारा रचित सिद्ध किया है। यद्यपि यह चर्चा बहुत नयी नहीं है, इसके पूर्व भी इस मङ्गलश्लोक पर विचार-विनिमय प्रस्तुत किया गया है, तो भी विद्वानोंके विचारार्थ उन्होंने उस पुराने प्रश्नको नये समाधानोंके साथ निबद्ध कर चिन्तनकी दिशाको एक नया मोड़ दिया है।

'णमोकार मन्त्र' के पाठालोचनमें 'अरहन्त' पद पर नया प्रकाश डाला गया है। लेखकने वर्तमानमें प्रचलित 'अरिहन्त' पदकी समीक्षा करते हुए बताया है कि 'अरि' शब्दमें निहित इकार शक्ति बोधक बीज है, और इसका व्यवहार उस शक्तिके लिए किया गया है, जो लौकिक कामनाओंको पूर्ण करने वाली होती है। इसी प्रकार 'अरुहन्त' पदमें निहित रकारोत्तरवर्ती उकार उद्वेग या स्तम्भनबीज है। अतएव उक्त दोनों पदोंका प्रयोग छठवीं सातवीं शतीमें उस समय प्रचलित हुआ होगा, जब मारण, मोहन और उच्चाटनकी विधियाँ प्रचलित हो चुकी थीं। गुप्तकालमें जब संस्कृतियोंका समन्वय हुआ; तो जैन-वाङ्मयमें उक्त बीजाक्षर प्रविष्ट हुए और मङ्गलमन्त्रमें उनका अध्याहार हो गया। खारवेलके शिलालेखमें तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियोंमें 'अरहन्त' पद ही उपलब्ध होता है। कुलार्णव तन्त्रमें 'अ' कल्याण-बीज; 'इ' शक्ति-बीज, और 'उ' को उद्वेग-बीज कहा है। अतः यह निबन्ध भी चिन्तनके क्षेत्रमें एक नयी दिशाकी ओर ले जाता है।

'जैनधर्म और दर्शन : संक्षिप्त इतिवृत्त' ( ई० पू० २७०–३०० ) में रत्नकारण्डश्रावकाचारमें आये हुए मूलगुण बोधक पद्यको प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। अतः यह निबन्धांश भी विद्वानोंके लिए विचारोत्तेजक है।

'देवदर्शनमें प्रयुक्त प्रतीक' शीर्षक निबन्धमें प्रतीकोंका साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। इस निबन्धमें पर्याप्त ज्ञातव्य सामग्री है।

'अमराविक्खेपवाद और स्याद्वाद'का तुलनात्मक अध्ययन भी पठनीय है। 'जैनदर्शनमें नयवाद' शीर्षक निबन्धमें की गयी नयमीमांसा ज्ञान वर्द्धक है। शेष निबन्ध भी अपने-अपने दृष्टिकोणोंसे लिखे गये हैं और उनमें भी पर्याप्त उपयोगी सामग्री है।

चतुर्थखण्ड साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति शीर्षक है। इस खण्डके लगभग सभी निबन्ध विशिष्ट दृष्टिकोणोंसे लिखे गये हैं और उनमें प्रचुर अध्ययनीय सामग्री है। 'गद्यचिन्तामणि : परिशीलन' शीर्षक निबन्धमें कथावस्तुके गठन पर जिन प्रवृत्तियों और तत्त्वोंका निर्देश किया गया है, वे अन्य कथा ग्रन्थोंके अध्ययनके लिए प्रतिमान हैं। प्रत्येक

अध्येता नवीन सामग्री प्राप्त करेगा। 'महाकवि धनपाल और उनकी तिलकमञ्जरी' शीर्षक निबन्धमें तिलकमञ्जरीका तुलनात्मक विश्लेषण एवं उसकी विशेषताएँ स्वस्थ अध्ययनकी सामग्री है। 'अपभ्रंश दोहा साहित्य : एक दृष्टि' शीर्षक निबन्धमें अपभ्रंश दोहा साहित्यका संक्षिप्त विवेचन और विविध विषयक दोहोंका विषय प्रतिपादन ज्ञातव्य सामग्रीमें परिगणित है। 'मोहन बहोत्तरी' और अणथमिउकहा' ये दोनों रचनाएँ अप्रकाशित हैं। 'मोहन बहोत्तरीके काव्य सौष्ठवका परिचय भी कुन्दनलालजीने विद्वत्तापूर्ण उपस्थित किया है। प्रो० डा० राजाराम जैनने अणथमिउकहा' का काव्य-सौष्ठव प्रतिपादित कर पाण्डुलिपि भी प्रकाशित की है। महाकवि रइधूने जहाँ बड़े-बड़े प्रबन्धकाव्योंका सृजनकर जैन वाङ्मयको समृद्ध किया है, वहाँ "अणथमिउकहा" जैसी लघुकाय कृतियाँ भी लिखी हैं। डा० जैनने इस कृतिका बहुत सुन्दर ज्ञातव्य तथ्योंसे परिपूर्ण परिचय प्रस्तुत कर चिन्तनकी दिशाको कुछ नये तथ्य प्रदान किये हैं। इस खण्डका शोधपूर्ण ऐतिहासिक निबन्ध प्राचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, सिद्धान्ताचार्यका है जिसमें पण्डित आशाधरकी कृतियोंमें समाहित लेखक और आचार्योंको प्रकाशमें लानेका सर्वप्रथम प्रयास किया है। इस निबन्धमें ज्ञात आचार्योंके अतिरिक्त-अनेक अज्ञात विद्वान् मनीषियोंके सम्बन्धमें भी निर्देश आये हैं। इन अज्ञात लेखकोंके व्यक्तित्व और कृतित्वके सम्बन्धमें अन्य तथ्य ज्ञात करना अन्वेषण की दिशाको प्रगति देना है। 'आगरामें निर्मित वाङ्मय' शीर्षक निबन्धमें आगराकी उर्वर साहित्य भूमिका अतीत अङ्कित किया गया है। आश्चर्य यह है कि जिस भूमिका अतीत इतना गौरवमय हो वह भूमि आज अपनी थाती गुरुगोपालदास जैसे महनीय व्यक्तित्त्व को भी भूल रही है। काश, इस बञ्जरभूमिको सिञ्चित करनेका कार्य कोई प्रतिभाशाली मनीषी सम्पन्न कर सके तो फिरसे गुरु गोपालदास की यह भूमि शिष्योंकी और मनीषियोंकी परम्परा को समृद्ध बनानेमें सक्षम हो सकेगी।

इतिहास उपखण्डमें "बिहारमें मध्यकालीन जैन-धर्मकी स्थिति : संक्षिप्त इतिवृत्त" शीर्षक निबन्धमें अनेक ज्ञातव्य तथ्य तो हैं ही, साथ ही जिनसेनाचार्यकी कर्मभूमि ओर उपदेश भूमि बिहारको सिद्ध कर विचारके लिए नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। जैनमूर्ति कलापर श्री नीरज जैनका निबंध भी पठनीय है। सांस्कृतिक दृष्टिसे लिखे गये निबंधोंमें प्रो० रामनाथ पाठक'प्रणयी' का "मैथिली-कल्याण नाटकमें प्रतिपादित संस्कृति" शीर्षक निबन्ध महत्त्वपूर्ण है। जैन चित्र-कला : संक्षिप्त सर्वेक्षण" में जैन चित्रकलाका इतिवृत्त भी ज्ञातव्य तथ्योंसे परिपूर्ण है। प्रो० श्री कृष्णदत्त बाजपेयी, सागर विश्वविद्यालयका "मथुराका कङ्काली टीला : एक अनुशीलन" शीर्षक निबन्ध लघुकाय होने पर भी पठनीय है। श्री डा० ज्योतिप्रसाद जैनने 'जैन इतिहासके उपकरणों पर जो प्रकाश डाला है, वह भी श्लाघनीय है।

## आभार प्रदर्शन

प्रस्तुत स्मृति-ग्रन्थके समस्त लेखकों, श्रद्धाञ्जलि एवं शुभ कामना प्रेषकों तथा सफलताके लिए शुभसन्देश भेजने वालोंके प्रति सम्पादक-मण्डल आभारी है। विद्वान् मनीषियोंके सहयोगसे ही यह प्रयास सम्पन्न हो सका है।

इस स्मृति ग्रन्थके संयोजनमें कतिपय महानुभावोंने सम्पादक मण्डलको विशेष सहयोग प्रदान किया है। अतः उन महानुभावोंके प्रति विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करना परमावश्यक है। ग्रन्थकी साजसज्जा स्वच्छ कलापूर्ण मुद्रण, गेट-अप जिल्द प्रभृति समस्त उपकृत्योंको श्री महावीर प्रेसके सञ्चालक भाई वाबूलाल जैन फागुल्लने किया है। उनकी तत्परता एवं लगनने इस ग्रन्थको समयपर प्रकाशित करनेके लिए सम्पादकमण्डलको पर्याप्त उत्साहित किया है। अतः श्री फागुल्लजीके प्रति सम्पादक-मण्डल आभार व्यक्त करता है। फागुल्लजीको मुद्रण सम्बन्धी सूझबूझ उच्चकोटिकी है।

सामग्री सङ्कलनमें सहयोग प्रदान करनेवाले व्यक्तियोंमें हम श्री कपूरचन्द जैन बरैया एम० ए० के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं, जिनके प्रयाससे हमें जीवन परिचय सम्बन्धी रचनाएँ उपलब्ध हुईं।

रचनाएँ प्राप्त करनेके हेतु पत्राचार करनेमें प्रो०डॉ० राजाराम जैन एवं उदीयमान प्रो०कृष्णमोहन अग्रवालसे पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ है। अधिकांश निबन्धोंको संशोधन कर पुनः लेखनका कार्य सम्पन्न करना पड़ा। इस कार्यमें प्रो० अग्रवालसे सर्वाधिक सहयोग प्राप्त हुआ है। अतएव सम्पादक मण्डल दोनों युवक प्रोफेसरोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता है।

सम्पादकोंका काम उस पाचकका है जो स्वादिष्ट व्यञ्जन उपभोक्ताओंके समक्ष प्रस्तुत कर उनकी रसज्ञता द्वारा ही अपने कार्योंका मूल्याङ्कन प्राप्त करता है। अन्तमें हम उस महान् आत्माके प्रति अपनी श्रद्धाभक्ति समर्पित करते हैं जिनकी ज्योतिसे आज जैन विद्वत्परम्परा उद्भासित हो रही है और जिनकी स्मृतिमें यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है—

**हम अनन्ततक सदा तुम्हारा गायेंगे यश-गीत।**
**हम अनन्ततक सदा तुम्हारे चरणों में सुविनीत॥**

चैत्र कृष्णा द्वादशी, २०२३

सम्पादकमण्डल

# विषयक्रम



## प्रथम खण्ड

### जीवन परिचय



### संस्मरण



### श्रद्धाञ्जलियाँ

# द्वितीय खण्ड

## प्रवृत्तियाँ



## विचार

## निबन्ध



## रचनाओंका अनुशीलन



# तृतीय खण्ड

## धर्म और दर्शन

# चतुर्थ खण्ड

## साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति



●

# कतिपय सन्देश

SECRETARY TO THE PRESIDENT OF INDIA
RASTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI

The President is glad to know that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad will shortly celebrate the centenary of the birth of Shri Gopaldas Bariaya. He sends his best wishes on the occasion.

**Y.D.Gundevia**

VICE PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

I am happy to learn of the Centenary Celebrations of Shri Guru Gopaldas Bariaya, a renowed scholar of 19th Century, organized in a befitting manner by the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad. I send my best wishes for the success of the Centenary Celebrations.

**Zakir Hussain**

RAJ BHAVAN
PATNA

Shri M. Anantasayanam Ayyangar, Governor of Bihar welcomes the proposal to celebrate in the month of Chaitra the Centenary of Guru Gopaldas Bariaya. He was a great scholar and was the founder progenitor of a new school of studies in the most literary tradition of the other languages. His contribution in the literary and social sphers is great and will stand for all time. He wishes the Celebration every success

GOVERNOR'S CAMP,
UTTAR PRADESH.
LUCKNOW.

With reference to your letter dated September 30, 1965, I am desired to say that the Governor is glad to know that the birthday centenary celebrations of Guru Gopaldas Bariaya is being held at Agra

The Governor sends his best wishes for the success of the celebrations.

**B. Dey**
Assistant Secretary Uttar Pradesh.

RAJ BHAVAN,
BHOPAL

I am glad to learn that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to celebrate the centenary of Guru Gopaldas Bariaya, one of the pioneering scholars of India in Sanskrit, Prakrit and Apabhransa.

I send my best wishes for the function and offer at the same time my own homage to the great scholar.

**K C. Reddy**
Governor
Madhya Pradesh.

MINISTER OF
LABOUR AND EMPLOYMENT
NEW DELHI

I am glad to learn that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad is going to observe centenary celebrations of Guru Gopaldas Bariaya.

Guru Gopaldas was an institution in himself. He was a versatile genius and had great love for Sanskrit. He brought Jain literature into limelight and made it popular.

I wish the Centenary Celebrations all success.

**Jagjiwan Ram**

HOME MINISTER
INDIA.
NEW DELHI
October 29, 1965

I am glad to know that it has been decided to observe Shree Guru Gopaldas Bariaya Centenary Celebrations and to bring out a commemoration volume on this occasion. Guru GopaldasJi's contribution in the literary and social spheres and especially in the study of Sanskrit has been commendable.

I wish the function all success.

**G. L. Nanda**

MINISTER OF COMMUNICATIONS
AND PARLIAMENTARY AFFAIRS,
NEW DELHI.

I am glad to know that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to observe the centenary celebrations of Shree Guru Gopaldas Bariaya in the month of Chaitra of 2023 Vikramiya.

I send my best wishes for the success of the function.

**S. N. Sinha**

MINISMER OF STATE FOR RAILWAYS
INDIA
NEW DELHI

I am glad to know that Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to observe Shri Guru Gopaldas Bariaya's Centenary Celebrations in the month of Chaitra-2023 Vikramiya.

Shri Guru Gopaldas Bariaya is held in great reverence for his unique services in literary and social fields. He was an enlightened soul and his contributions towards the Sanskrit education and Jain literature was commendable.

I wish the Centenary Celebrations all success.

**Ram Subhag Singh**

MINISTER
EDUCATION AND FORESTS
MAHARASHTRA
Sachivalaya, Bombay-32

I am glad to learn that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to observe Shri Guru Gopaldas Bariaya's Centenary Celebrations in Chaitra of 2023 Vikaramiya and that it is publishing a commemoration volume on the occasion.

Shri Guru Gopaldas Bariaya is one of the pioneering scholars of the nineteenth century and has made valuable contributions to Sanskrit and Prakrit literature. He took a keen interest in the advancement of Sanskrit education and literature. He was a devout worker, truth seeker, a great scholar, orator and a successful teacher.

Sanskrit, Pali, Prakrit are classical languages in which most of our ancient books are written which give a glimpse of Indian culture and civilization. It is in the fitness of things that Shri Guru Gopaldas's teachings are made known to the coming generations so that they could derive inspiration from his life and work.

I send my good wishes for the success of the celebrations and publication.

**M. D. Chaudhari**

CHIEF MINISTER
WEST BENGAL
CALCUTTA

The Digambar Jain Vidwat Parishad is shortly celebrating the centenary of Guru Gopaldas Bariaya, a Jain scholar, greatly honoured in his times for literary studies and interpretation of religious thought.

In India we look forward to the past that is, our glorious heritage, our inspiration to-day and our promise of a peaceful and prosperous to-morrow, both in the realm of matter and spirit.

**P. C. Sen**

CHIEF MINISTER,
PUNJAB.

I am glad to know that the "Indian Digambar Jain Vidwat Parishad" has decided to observe Centenary celebrations in a befitting manner to pay homage to the great Shree Guru Gopaldas Bariaya. It is indeed an excellent idea to bring out a commemoration volume on the occasion as a humble tribute to the great son of India.

The services of the Reverened Guru towards the advancement of Sanskrit education and Jain literature are well known. The nation will always remember him with gratitude as a devout worker, truth seeker, a great scholar, orator, author, teacher and a maker of history.

I send my good wishes on the occasion.

**Ram Kishan**

MINISTER,
EDUCATION DEPARTMENT, PUNJAB
CHANDIGARH

The greatest heroes of India are not warriors. Throughout the length and breadth of this ancient country our places of worship are those which have been haloed by pious men who dedicated their lives for the good of mankind. In Indian history the last century is truly an era of renaissance. It gave birth to scores of great souls who kindled a new spirit in the country. The seeds of re-birth of new India were sown by these great sons of our motherland. Shree Guru Gopaldas Bariaya belonged to the long line of our saviours who, by his life and actions, set an example that a man can attain his heights by living a life of 'Girhasti'.

The present generation is indebted to him for the noble path shown by him, and coming generations will draw inspiration from his life.

**Prabodh Chandra**

MINISTER-IN-CHARGE
LABOUR AND PUBLICITY
GOVERNMENT OF WEST BENGAL

I am glad to learn that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad is organising centenary celebration of Guru Gopaldas Bariaya. Guru Gopaldas Bariaya was a profound scholar in Jain Philosophy, Sanskrit, Prakait and Apabhransa literature. He worked throughout his life for the propagation of literature and had started several institutions through India for the mission. But for his selfless activities in the cause of Jain literature, many Jain scriptures would have remained unknown. He was the pioneer in inspiring the high ideals of Five Bratas to thousands of his devotees. His life was a fine coordination of knowledge and character. I offer my respectful homage to his memory and I wish the celebration all success.

**Bijoy Singh Nahar**

SPEAKER
LEGISLATIVE ASSEMBLY
WEST BENGAL
CULCUTTA

I am glad to know that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad is going to celebrate birthday centenary of Guru Gopaldas Bariaya, an outstanding Indian scholar of the 19th Century, in the month of Chaitra next. The study of the life of such great men always inspire the younger generation of the country to enable them to follow their footsteps in the path of progress.

I wish your celebration all success.

**Keshab Chandra Basu**

CHAIRMAN
LEGISLATIVE COUNCIL
WEST BENGAL
CALCUTTA

It is quite in the fitness of things that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to bring out a commemoration volume in connexion with the centenary celebrations of Pandit Gopaldas Ji Baraiya in the month of Chaitra of 2023 Vikramiya. Pandit Gopaldas Ji Bariaya is a pioneer in the field of Sanskrit, Prakrit and Apabhransa on the one hand and a social and religious worker on the other. This combination has brought the Panditji to the fore-front of Indian culture and civilization.

I wish the sponsors of the Centenary Celebration all success.

**Pratap Chandra Guha Ray**

RAGHAVA SADAN
6-3-1248 SOMAJIGUDA.
HYDERABAD-4.

I am happy to learn that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to observe the Centenary Celebrations of Guru Gopaldas Bariaya and to bring out a commemoration volume to perpetuate his hallowed memory. I gladly associate myself with the Vidwat Parishad in paying my respects and sending my own tribute of praise on his long record of public service.

I am proud to note that Guru Gopaldas is one of those great men of India whose services and sacrifice glorify the History of India. His selfless service towards the advancement of Sanskrit education and Jain literature is praiseworthy I am sure the Nation will remember him for all time to come with gratitude for bringing the vast Jain literature into limelight and in providing social welfare through his impressive speeches and writings. His life is surely be a source of inspiration to the future generation.

I wish every success to the Celebrations.

**Gottipati Brahmayya**
**Chairman**
Andhra Pradesh Legislative Council

VARANASEYA SANSKRIT VISHWAVIDYALAYA
VARANASI-2

I am very glad to hear that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to observe the Centenary celebrations in honour of Shree Guru Gopaldas Bariaya. Guru Gopaldas Ji's life was one of devotion and dedication to the cause of true knowledge as expounded in the ancient Sanskrit and Prakrit literature of India and was exemplary in everyway. He is rightly classed as one of the great men of India who reinter-preted the tradition and learning of this country, especially in regard to the religion and philosophy of the Jains, and has left his impress on a large section of the people of India. It is therefore right and proper that we should remind ourselves of his life and work by means of the Centenary celebrations. I wish the celebrations every success.

**S. N. M. Tripathi**
Vice-Chancllor

BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI-5

दिनांक १० मार्च १९६६ ई०

आपका दिनांक १८ फरवरी १९६६ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोग भारतीय दर्शनों के प्रकाण्ड मनीषी 'स्याद्वादवारिधि' पण्डित गोपालदास बरैया का स्मृति-शताब्दी-समारोह मना रहे हैं।

जैन ग्रन्थों, विद्वानों और साधु-वर्ग से मुझे जैन तत्वज्ञान की कतिपय विशेषताएँ ज्ञात हुई हैं। वे सचमुच में ऐसी हैं, जिनमें मानव के ही नहीं, समस्त जीव-जगत के भी हित की क्षमता निहित है। अहिंसा, स्याद्वाद, अनेकान्त, नयवाद, अपरिग्रह आदि ऐसे सिद्धान्त हैं जो जैन-दर्शनकी उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं।

पं० गोपालदास बरैया इन सिद्धान्तों के तत्व-द्रष्टा मर्मज्ञ विद्वान् थे। वे अपने समय के एक प्रतिभाशाली विचारक, लेखक और धारा-प्रवाही प्रवक्ता थे। उनकी साहित्यिक, सामाजिक और राष्ट्रीय सेवायें अपूर्व हैं। जैन शिक्षाओं के प्रसार तथा शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना में उनका योगदान सराहनीय है। जो व्यक्ति रेलवे यात्रा में अपना सामान तौलवा कर सफर करे और तीन वर्ष से ऊपर एक दिन अधिक होने पर अपने बच्चे के टिकट का पूरा किराया स्वयं चुकाये, उससे बढ़कर राष्ट्रसेवी और राष्ट्र-हितचिन्तक कौन हो सकता है?

ऐसे सुश्रावक प्रकाण्ड विद्वान् का स्मृति-शताब्दी-समारोह मनाया जाना उपयुक्त है। समारोह की सफलता के लिए मेरी शुभ-कामनाएँ हैं।

**न० प० भगवती**
कुलपति
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

PATNA UNIVERSITY
PATNA-5

I convey herewith my sincerest good wishes and most respectful homage to the sacred memory of Shree Guru Gopaldas Bariaya, one of the most inspiring thinkers and creative genius of our country in the 19th century.

With kind regards,

**K. K. Datta**
Vice-Chancellor

UNIVERSITY OF LUCKNOW

I am happy to hear that you are shortly bringing out a Commemoration Volume in honour of Shree Guru Gopaldas Bariaya.

I wish the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad every success in their efforts to spread the message of this great saint and scholar.

With best regards,

**A. V. Rao**
Vice-chancellor

UNIVERSITY OF SAUGOR
SAGAR M.P.

I am glad to learn that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad has decided to celebrate his centenary to Guru Gopaldas Baraiya the founder of the new school of studies in Sanskrit, Prakrit and Apabhransa.

This would be a fitting tribute to the scholar and I wish for success of the venture.

**M. P. Sharma**
Vice Chancellor

MUSLIM UNIVERSITY
ALIGARH.

With reference to your letter of 16 February 1966, I am sending you my best wishes on the occasion of the Centenary Celebration of Guru Gopaldas Bariaya.

**Ali Yavar Jung**
Vice Chancellor

PANJAB UNIVERSITY
DEPARTMENT OF SANSKRIT
CHANDIGARH.

On behalf of Vice Chancellor of Panjab University and also on my own, I send the most cordial and gracious greetings in connection with the Centenary celebrations in the Memory of Guru Gopaldas Bariaya.

The Jainas have immensely contributed towards the noble ideals of society and humanity at large with special reference to right conduct and non-violent approach.

Once again we wish you a success in this loudable undertaking.

**D. N. Shukla**

EMBASSY
OF THE
UNITED STATES OF AMERICA

The Ambassador has asked me to thank you for your letter of September 30.

He is happy to note that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad is going to observe the Centenary Celebrations of Guru Gopaldas Bariaya. The Ambassador is extremely busy at this time and he regrets that he cannot write a special message, but he sends his best wishes for the success of the celebrations.

**Richard F. Celeste,**
Personal Assistant to the Ambassador

HIGH COURT
ALLAHABAD

Thank you for yours dated September 30, 1965. I am pleased to hear that the Indian Digambar Jain Vidwat Parishad is celebrating the Centenary of the birthday of Guru Gopaldas Bariaya and will publish a Commemoration Volume on the occasion. I wish the celebration all success and hope that the Commemoration Volume will be read with interest and benefit by all interested in true religion and Sanskrit.

**M. C. Desai**, I.C.S.

CEYLON HIGH COMMISSION
224, JOR BAGH NURSERY,
NEW DELHI.

Thank you very much for your letter of 30. 9. 65 regarding the Centenary Celebrations in the month of Chaitra of 2023 Vikramiya.

The High Commissioner wishes the function every success.

**D. Samansehun**
for High Commissioner

BRITISH INFORMATION SERVICES
BRITISH HIGH COMMISSION
CHANAKYAPURI, NEW DELHI

Thank you so much for your letter dated 30 September about Guru Gopal das Bariaya.

I was most interested to learn of the proposal to publish a commemorative volume next year and take this opportunity of wishing you every success with the venture.

**G. R. Gauntlett**
Acting Director

PATNA UNIVERSITY
PATNA-5

It is very gratifying that a Commemoration Volume is under preparation to pay homage to Shree Guru Gopaldas Bariaya. The ideals the Gurudeva stood for and the way he struggled to achieve them should inspire social workers of the future. The Commemoration Volume, is expected, will record those ideals and also acquaint the readers with notable instances in the life of the Gurudeva and should thus be an invaluable asset for social workers.

**S. R. Prasad**
Registrar

# सन्तों के आशीर्वाद

भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्ने 'गुरु गोपालदास बरैया' का शताब्दपूर्ति महोत्सव आयोजित किया है, पत्र द्वारा यह जानकर प्रसन्नता हुई। समाजके सांस्कृतिक पक्षको धन्य तथा यशस्य बनानेमें पण्डितकुलका महनीय योगदान सदैव अपेक्षित रहा है। अध्ययन-अध्यापन द्वारा शास्त्र परम्पराको विश्रृंखलतासे बचाकर उज्जीवित रखनेमें बीसवीं शतीमें जिस विशिष्ट व्यक्तित्वने जैन वाङ्मयको गतिशीलता एवं पुनर्जागरण प्रदान किया, वह 'गुरु गोपालदास' थे। तत्सम्बन्धी 'स्मृतिग्रन्थ' के प्रकाशनका निर्णय लेकर विद्वत् परिषद्ने एक अपेक्षित अभावकी पूर्ति करनेका शुभारम्भ किया है। आशा है, जैसाकि प्रसारित रूपरेखाके आकलनसे प्रतीत होता है, यह 'स्मृतिग्रन्थ' जिन सरस्वतीके सांस्कृतिक इतिहासकी पृष्ठभूमिको उजागर करनेमें सहायक होगा। आशीर्वाद सहित—

**—मुनि श्री विद्यानन्दजी महाराज**

एक दीपसे हजारों दीप जल जाते हैं। जिस दीपमे हजारों दीप जलें, उसे महादीप ही कहा जायगा। पण्डित गोपालदासजी वरैयाका जीवन ऐसा ही महादीप था। उन्होंने प्रज्वलनकी जिस परम्परा का सूत्रपात किया, वह आज भी अनुकरणीय है। उसमें जो ज्योति फूटी उसमें आज भी प्रकाश देनेकी क्षमता है।

जैन दर्शन सत्यकी उपलब्धिका प्रबलतम माध्यम है। किन्तु उसके सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्रकी सम्बुद्धि और जन साधारणके बीच अत्यन्त दूरी उत्पन्न हो गई थी। उसे पाटनेमें पण्डितजीका प्रयत्न विरल-कोटिमे रहा है। उनकी शासन-समुन्नतिका मनोभाव, साहित्य-सर्जन, दृष्टि-परिशोध और चारित्रिक-आराधन सहज प्रशस्त था। ऐसे व्यक्तिके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापनको मैं स्वयंके प्रति कृतज्ञ होना मानता हूँ।

१२ अक्टूबर १९६६
बीदासर ( राजस्थान )

**—आचार्य तुलसी**

इस युगमें गुरु गोपालदासजीने समाजमें जैन शास्त्रोंकी शिक्षाका आरम्भ सबसे पहले किया है। मैं उन्हें आदि गुरु मानती हूँ, वे वह दीपक थे, जिसकी लौ से अगणित दीपक प्रज्वलित हुए हैं। उनकी जीवन साधना, त्याग, सेवाभावना एवं निस्वार्थ कार्य करनेकी प्रवृत्ति आजके नेता और कार्य-कर्त्ताओंको प्रेरणा देनेके लिए अद्भुत स्तम्भ हैं। गुरुजीकी जैसी मेधा कम ही व्यक्तियोंको प्राप्त होती है। उन्होंने अपनी बहुमुखी साहित्यिक प्रवृत्तियों द्वारा जनमनको उद्बुद्ध किया था। जैन सिद्धान्त दर्पण जैसी गम्भीर रचनाके लेखकने सुशीला उपन्यास जैसी मनोरंजक रचनाका निर्माण कितनी स्वाभाविक शैलीमें किया है, यह देखते ही बनता है। शास्त्रार्थों द्वारा धर्म और दर्शनकी मूलमान्यताओंको सिद्ध कर गुरु गोपालदासजीने वही कार्य किया है, जो कार्य अपने युगमें स्वामी अकलंकदेवने। निन्दा और आक्षेप करनेवालोंको मुँहतोड़ उत्तर देकर स्याद्वादवाणीकी महत्ता सिद्ध करनेवाले गुरु गोपालदासको समाज भूल नहीं सकता है। सरस्वतीके सेवक होनेके कारण लक्ष्मी उनसे सदा ही असन्तुष्ट रहीं, या कर्मठ गोपाल-दासजीने लक्ष्मीको कभी आवभगत नहीं की। उन्होंने ज्ञानका अलख जगाया विद्यालय और परीक्षालयोंकी स्थापना कर जैनविद्याके अध्ययन-अध्यापनको गति प्रदान की।

दि० जैन विद्वत्परिषद् गुरु गोपालदास स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित कर गुरु ऋणसे मुक्त होनेका जो प्रयास कर रही है, यह स्तुत्य है। अतः भूली हुई कड़ीको जोड़कर इतिहासकी शृंखलाको सुसम्बद्ध करने-के इस कार्यकी मैं श्लाघा करती हूँ।

**पं० ब्र० चन्दाबाई**

अधिष्ठात्री श्रीजैन बालाविश्राम, आरा

# प्रथम खण्ड

●

## जीवन परिचय



## संस्मरण



## श्रद्धाञ्जलियाँ

●

# जीवन परिचय

•

# पण्डित श्री गुरु गोपालदास वरैया : जीवनवृत्त

स्व० श्री नाथूरामजी प्रेमी

पंडितजीका जन्म वि० सं० १९२३ के चैत्रमें आगरेमें हुआ था। आपके पिताका नाम लक्ष्मणदासजी था। आपकी जाति 'वरैया' और गोत्र 'एछिया' था। आपके बाल्यकालके विषयमें हम विशेष कुछ नहीं जानते। इतना ही मालूम है कि आपके पिताकी मृत्यु छुटपनमें ही हो गई थी। आपकी माताकी कृपासे आप मिडिल तक हिन्दी और छठी सातवीं तक अंग्रेजी पढ़ सके थे। बचपनमें धर्मकी ओर आपकी जरा भी रुचि नहीं थी। अंग्रेजीके पढ़े लिखे लड़के प्रायः जिस मार्गके पथिक होते हैं, आप भी उसी पथके पथिक थे। खेलना कूदना, मजामौज, तम्बाकू, सिगरेट पीना, शेर और चौबोला गाना आदि आपके दैनिक कृत्य थे। १९ वर्ष की अवस्थामें आपने अजमेरमें रेलवेके दफ्तरमें पन्द्रह रुपये महीनेकी नौकरी कर ली। उस समय आपको जैनधर्मसे इतना भी प्रेम न था कि कमसे कम जिनमन्दिरमे दर्शन तो प्रतिदिन कर लिया करें। अजमेरमे पंडित मोहनलालजी नामके एक जैन विद्वान् थे। एक बार उनसे आपका जैनमन्दिरमे परिचय हुआ। उनकी संगतिसे आपका चित्त जैनधर्मकी ओर आकर्षित हुआ और आप जैनग्रन्थोंका स्वाध्याय करने लगे। दो वर्षके बाद आपने रेलवेकी नौकरी छोड़ दी और रायबहादुर सेठ मूलचन्दजी नेमिचन्दजीके यहाँ इमारत बनवानेके कामपर २० रु० मासिककी नौकरी कर ली। आपकी ईमानदारी और होशियारीसे सेठजी प्रसन्न रहे। अजमेरमें आप ६, ७ वर्ष तक रहे। इस बीच आपका अध्ययन बराबर होता रहा। संस्कृतका ज्ञान भी आपको वहीं पर हुआ। वहाँकी जैनपाठशालामे आपने लघुकौमुदी और जैनेन्द्रव्याकरणका कुछ अंश और न्यायदीपिका ये तीनों ग्रन्थ पढ़े थे। गोम्मटसारका अध्ययन भी आपने उसी समय शुरू कर दिया था। अजमेरके सुप्रसिद्ध पंडित मथुरादासजी और 'जैनप्रभाकर'के वास्तविक सम्पादक बाबू बैजनाथजीसे आपका बहुत मेल-जोल रहता था।

## कुशल व्यापारी

संवत् ४८ में सेठ मूलचन्दजी जैनबिद्री मूडबिद्रीकी यात्राको निकले और आपको साथ लेते गये। लौटते समय आप बम्बई आये और यहाँ आपकी तबियत ऐसी लग गई कि फिर आपने यहीं रहनेका निश्चय कर लिया। हिसाब-किताब के काममे आप बहुत तेज थे, इस कारण यहाँ आपको एस० जे० टेलरी नामकी यूरोपियन कम्पनीमें ४५ रु० मासिककी नौकरी मिल गई। आपके कामसे कम्पनीके मालिक बहुत खुश रहते थे। उन्होंने थोड़े ही समयमें आपका वेतन ६० रु० मासिक कर दिया। उसी समय आपकी माताजीका स्वर्गवास होगया और आप बिना छुट्टी लिये ही आगरे चल दिये। फल यह हुआ कि आपको नौकरीसे हाथ धोना पड़ा। इसके बाद आप फिर बम्बई आये और जुहारूमल मूलचन्दजीकी दूकान-पर मुनीम हो गये। कुछ समय पीछे एस० जी० टेलरीने आपको फिर रख लिया। अबकी बार आपने कई वर्ष तक यह काम किया। सं० ५१ में दिल्लीवाले लाला श्यामलालजी जौहरीके साथ आप जवाहरातकी कमीशन एजेंटीका काम करने लगे। इस कामको आपने कोई छः महिने तक किया, पर इसमें अपने अचौर्य और सत्यव्रतका पालन न होते देखकर आप इससे अलग हो गये और 'गोपालदास लक्ष्मणदास' के नामसे गल्लेका काम करने लगे। यथेष्ट लाभ न होनेसे पाच-छः महीनेके बाद यह काम उठा दिया। संवत् ५२ मे पंडित धन्नालालजी काशलीवालके साझेमें आपने रूई, अलसी, चाँदी आदि की दलालीका काम करना शुरू किया और तीन-चार वर्ष तक जारी रक्खा। संवत् ५६ में इसी कामको आप स्वतन्त्र होकर करने लगे और दो वर्षतक करते रहे।

बम्बईमें सेठ नाथारंगजी गांधीके फर्मके मालिक सेठ रामचन्द्र नाथाजीसे आपका अच्छा परिचय होगया था। सेठजी बड़े ही सज्जन और धर्मात्मा थे। सं० ५८ में आपके ही साझेमें पंडितजीने मोरेनामें आढ़तकी दूकान खोल ली और

१. आपका स्वर्गवास बम्बईमें दि० ३० जनवरी १९६० को हुआ है। उस समय आपकी अवस्था ७८ वर्ष की थी। सं०

बम्बईका रहना छोड़ दिया। यह काम आपने कोई चार वर्ष तक किया। गांधी नाथारंगजीको जब मोरेनामें लाभ नहीं दिखाई दिया, तब उन्होंने सं० ६२ मे शोलापुर बुला लिया और वहाँ आप लगभग दो वर्ष तक काम करते रहे। इसके बाद आप फिर मोरेना चले गये और वहाँ आपने सेठ हरिभाई देवकरण और सेठ रावजी नानचन्द्र की सहायता से 'गोपालदास माणिकचन्द्र' के नाम से स्वतन्त्र आढ़त की दूकान खोली। इस कामको करते हुए आपने 'माधव जीनिंग फैक्टरी लिमिटेड' की स्थापना की। इस काममे आपने बहुत परिश्रम किया, पर कई कारणों से आपको कोई दो वर्षके बाद इससे सम्बन्ध छोड़ना पड़ा। इसके बाद आपने फिर गांधी नाथारंगजीके साथ काम किया। सं० ७०,७१ मे रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीके और उनके बाद अभी दो वर्षसे आप रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्द्रजीके साझेमें काम करते थे।

जिस समय पण्डितजी अजमेरमें थे उस समय उनकी शादी हो चुकी थी। सं० ४५ मे आपको प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, जो थोड़े ही दिन जिया। सं० ४७ में कौशल्याबाई और ४९ में चि० माणिकचन्द्रका जन्म हुआ। इसके बाद आपके कोई सन्तान पैदा नहीं हुई। भाई माणिकचन्द्रके बालमुकन्द और चन्द्रभान नामके दो पुत्र है।

## सार्वजनिक जीवन

पण्डितजीके सार्वजनिक जीवनका प्रारम्भ बम्बईसे होता है। यहाँ आपके और पं० धन्नालालजीके उद्योगसे मार्गशीर्ष सुदी १४ सम्वत् १९४९ को दिगम्बर जैन सभाकी स्थापना हुई। पण्डित धन्नालालजी आपके अनन्य मित्रोंमें से थे। लोग आप दोनोंको 'दो शरीर एक प्राण' कहा करते थे। पण्डित धन्नालालजी आपके प्रत्येक काममे प्रधान सहायक थे। इसी वर्षके माघमे श्रीमन्त सेठ मोहनलालजीकी ओरसे खुरई (सागर) की सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठा हुई। इतना बड़ा जनसमूह शायद ही किसी मेलेमें इकट्ठा हुआ होगा। दिगम्बर जैनसमाजके प्रायः सभी धनी-मानी और पण्डित जन उपस्थित हुए थे। इस अवसरको बहुत ही उपयुक्त समझकर बम्बई सभाने आपको और पण्डित धन्नालालजीको सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाजकी एक महासभा स्थापित करनेके लिये खुरई भेजा। इसके लिये वहाँ यथेष्ट प्रयत्न किया गया, परन्तु यह जान कर कि जम्बूस्वामी मथुराके मेलेमें महासभाकी स्थापनाका निश्चय हो चुका है, इन्हें लौट आना पड़ा। इसके बाद सं० ५० के जम्बूस्वामीके मेलेमें भी बम्बई सभाने इन्हें भेजा और उनके उद्योगसे वहाँ पर महासभाका कार्य शुरू हुआ। महासभाके महाविद्यालयके प्रारम्भका काम आपके ही द्वारा होता रहा है। सं० ५३ के लगभग भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय स्थापित हुआ और उसका काम आपने बड़ी ही कुशलतासे सम्पादन किया। इसके बाद आपने दिगम्बर जैन सभा बम्बईकी ओरसे जनवरी सन् १९०० में (सं० ५६ के लगभग) 'जैनमित्र' निकालना शुरू किया। पण्डितजी की कीर्तिका मुख्य स्तम्भ 'जैनमित्र' है। यह पहले ६ वर्ष तक मासिक रूपमें और फिर सम्वत् ६२ की कार्तिक सुदीसे २-३ वर्ष तक पाक्षिक रूपमें पण्डितजीके सम्पादकत्वमें निकलता रहा। सं० १९६५ के १८ वें अंक तक जैनमित्रको सम्पादकीमें पण्डितजीका नाम रहा। इसकी दशा उस समयके तमाम पत्रोंसे अच्छी थी, इस कारण इसका प्रायः प्रत्येक आन्दोलन सफल होता था। सं० ५८ के आसोजमें बम्बई प्रान्तिक सभाकी स्थापना हुई और इसका पहला अधिवेशन माघ सुदी ८ को आकलूजकी प्रतिष्ठा पर हुआ। इसके मन्त्रीका काम पण्डितजी करते थे और आगे बराबर आठ दस-वर्ष तक करते रहे। प्रान्तिक सभाके द्वारा संस्कृत विद्यालय बम्बई, परीक्षालय, तीर्थक्षेत्र, उपदेश भण्डार आदिके जो-जो काम होते रहे हैं, वे पाठकोंसे छिपे नहीं हैं।

बम्बईकी दिगम्बर जैन पाठशाला सं० ५० में स्थापित हुई थी। यह पाठशाला अब भी चल रही है। पंडित जीवराम लल्लूराम शास्त्रीके पास आपने परीक्षामुख, चन्द्रप्रभकाव्य और कातन्त्र व्याकरण इसी पाठशालामें पढ़ा था।

## जैनसिद्धान्त विद्यालय

कुण्डलपुरके महासभाके जलसेमें यह सम्मति हुई कि महाविद्यालय सहारनपुरसे उठाकर मोरेनामें पंडितजीके पास भेज दिया जाय। परन्तु पंडितजीका वैमनस्य मुंशी चम्पतरायजीके साथ इतना बढ़ा हुआ था कि उन्होंने उनके अन्दरमें रहकर इस कामको स्वीकार न किया। इसी समय उन्हें एक स्वतन्त्र जैन पाठशाला खोलकर काम करनेकी इच्छा हुई। आपके पास पं० बंशीधरजी कुण्डलपुरके मेलेके पहले ही पढ़ते थे। अब दो-तीन विद्यार्थी और भी जैन सिद्धान्तका अध्ययन करनेके लिए उनके पास जाकर रहने लगे। इन्हें छात्रवृत्तियाँ बाहरसे मिलती थीं। पंडितजी केवल इन्हें पढ़ा देते थे। इसके बाद कुछ विद्यार्थी और भी आगये और एक व्याकरणका अध्यापक रखनेकी आवश्यकता हुई, जिसके लिये सबसे पहिले सेठ सुरचन्द्रजी शिवरामजीने ३० रु० मासिक सहायता देना स्वीकार किया। धीरे-धीरे छात्रोंकी संख्या इतनी हो गई कि

पण्डितजीको उनके लिये नियमित पाठशालाकी स्थापना करनी पड़ी। यही पाठशाला आज 'जैन सिद्धान्त विद्यालय' के नामसे प्रसिद्ध है और इसके द्वारा जैनधर्मके बड़े-बड़े ग्रन्थोंके पढ़नेवाले अनेक पण्डित तैयार हो गये हैं। पाठशालाके साथमें एक छात्राश्रम भी है। छात्राश्रम और पाठशालाके लिये एक अच्छी इमारत लगभग दस हजार रुपयोंकी लागतकी बन गई है। पाठशाला और छात्राश्रमका वार्षिक खर्च उस समय कोई दस हजार रुपया था, यह सब रुपया पंडितजी चन्देसे वसूल करते थे।

## उपाधियाँ

ग्वालियर स्टेटकी ओरसे पण्डितजीको मोरेनामें ऑनरेरी मजिस्ट्रेटका पद प्राप्त था। वहाँके चेम्बर आफ कामर्स और पंचायती बोर्डके भी आप मेम्बर थे। बम्बई प्रान्तिक सभाने आपको 'स्याद्वाद वारिधि' इटावेकी जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाने आपको 'वादिगज केशरी' और कलकत्तेके गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेजके पण्डितोंने 'न्याय वाचस्पति' पदवी प्रदान की थी। सन् १९१२ में दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाने आपको वार्षिक अधिवेशनका सभापति बनाया था और आपका बहुत बड़ा सम्मान किया था।

## अगाध पांडित्य

पण्डितजीकी पठित विद्या बहुत ही थोड़ी थी। जिस संस्कृतके वे पण्डित कहलाये, उसका उन्होंने कोई एक भी व्याकरण अच्छी तरह नहीं पढ़ा था। गुरुमुखसे तो उन्होंने बहुत ही थोड़ा नाममात्रको पढ़ा था। तब वे इतने बड़े विद्वान् कैसे हो गये? उसका उत्तर यह है कि उन्होंने स्वावलम्बनशीलता और निरन्तरके अध्यवसायसे पाण्डित्य प्राप्त किया था। पण्डितजी जीवनभर विद्यार्थी रहे। उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वह अपने ही अध्ययनके बलपर, और इस कारण उसका मूल्य रटे हुए या घोखे हुए ज्ञानसे बहुत अधिक था। उन्हे लगातार दस वर्षतक बीसों विद्यार्थियोंको पढ़ाना पड़ा और उनकी शंकाओंका समाधान करना पड़ा। विद्यार्थी प्रौढ़ थे, कई न्यायाचार्य और तर्कतीर्थोंने भी आपके पास पढ़ा है। इस कारण प्रत्येक शंकापर आपको घण्टों परिश्रम करना पड़ता था। जैनधर्मके प्रायः सभी बड़े-बड़े उपलब्ध ग्रन्थोंको उन्हे आवश्यकताओंके कारण पढ़ना पड़ा। इसीका यह फल हुआ कि उनका पाण्डित्य असामान्य हो गया। वे न्याय और धर्मशास्त्रके बेजोड़ विद्वान् हो गये और इस बातको न केवल जैनोंने, किन्तु कलकत्तेके बड़े-बड़े महामहोपाध्यायों और तर्क-वाचस्पतियोंने भी माना। विक्रमकी बीसवीं शताब्दिके आप मत्रसे बड़े दिगम्बर जैन पण्डित थे, आपकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति विलक्षण थी।

## व्याख्यान कला

पंडितजीकी व्याख्यान देनेकी शक्ति भी बहुत अच्छी थी। यह भी आपको अभ्यासके बल पर प्राप्त हुई थी आपके व्याख्यानोंमें यद्यपि मनोरंजकता नहीं रहती थी और जैन सिद्धांतके सिवाय अन्य विषयों पर आप बहुत ही कम बोलते थे, फिरभी आप लगातार दो, दो, तीन, तीन घंटे तक व्याख्यान दे सकते थे। आपके व्याख्यान विद्वानोंके ही कामके हुआ करते थे। वाद या शास्त्रार्थ करने की शक्ति आपमें बड़ी विलक्षण थी। जब जैन तत्व प्रकाशिनी सभा इटावेके दौरे शुरू हुए और उसने पंडितजीको अपना अगुआ बनाया, तब पंडितजी की इस शक्तिका खूब ही विकास हुआ। आर्यसमाजके कई बड़े-बड़े शास्त्रार्थमें आपकी वास्तविक विजय हुई और उस विजयको प्रतिपक्षियोंने स्वीकार किया। बड़ेसे बड़ा विद्वान् आपके आगे बहुत समय तक न टिक सकता था। आपको अपनी इस शक्तिका अभिमान था। कभी-कभी आप कहा करते थे कि मैं अमुक-अमुक महामहोपाध्यायोंको भी बहुत जल्दी पराजित कर सकता हूँ, परन्तु क्या करूँ उनके सामने घंटों तक धारा प्रवाह संस्कृत बोलनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। पंडितजी संस्कृतमें बातचीत कर सकते थे और अपने छात्रोंके साथ तो वे घंटों बोला करते थे, परन्तु व्याकरण इतना पक्का नहीं था कि वे इसकी सहायतासे शुद्ध संस्कृतके प्रयोग औरोंके सामने निर्भय होकर करते रहे।

## उनकी रचनाएँ

पंडितोंको लिखनेका अभ्यास प्रायः नहीं रहता है, पर पंडितजी इस विषयमें अपवाद थे। उनमें अच्छी लेखनशक्ति थी। यद्यपि अन्यान्य कार्योंमें फँसे रहनेके कारण उनकी इस शक्तिका विकास नहीं हुआ, फिर भी हम उन्हें जैन समाजके अच्छे

लेखक कह सकते हैं। उनके बनाये हुए तीन ग्रन्थ हैं—जैनसिद्धांत दर्पण, सुशीला उपन्यास, और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका। 'जैन सिद्धान्त दर्पण' का केवल एक ही भाग है। यदि इसके आगेके भी भाग लिखे गये होते, तो जैन साहित्यमें यह एक बड़े काम की चीज होती। यह पहला भाग भी बहुत अच्छा है। 'प्रवेशिका' जैनधर्मके विद्यार्थियोंके लिए एक छोटेसे पारिभाषिक कोशका काम देती है। इसका बहुत प्रचार है। सुशीला उपन्यास उस समय लिखा गया था, जब हिन्दीमें अच्छे उपन्यासोंका एक तरहसे अभाव ही था और आश्चर्यजनक घटनाओंके बिना उपन्यास ही नहीं समझा जाता था। उस समय की दृष्टिसे इसकी रचना अच्छे उपन्यासोंमें की जा सकती है। इसके भीतर जैनधर्मके कुछ गंभीर विषय डाल दिये गये हैं, जो एक उपन्यासमें नहीं चाहिये थे, फिर भी वे बड़े महत्वके हैं। इन तीन पुस्तकोंके सिवाय पंडितजीने सार्वधर्म, जैन जागरफी आदि कई छोटे-छोटे ट्रेक्ट भी लिखे थे।

## चारित्रिक दृढता

पंडितजीका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल था। इस विषयमें वे पंडित मंडलीमें अद्वितीय थे। उन्होंने अपने चरित्रसे दिखला दिया था कि संसारमें व्यापार भी सत्य और अचौर्यव्रतको दृढ रखकर किया जा सकता है। यद्यपि इन दो व्रतोंके कारण उन्हें बार-बार असफलताएँ हुई, फिर भी उन्होंने इन व्रतोको मरण पर्यन्त अखंड रखा। कड़ी परीक्षाओंमें भी आप इन व्रतोंसे नही डिगे। एक बार मंडीमें आग लगी और उसमें आपका तथा दूसरे व्यापारियोंका माल जल गया। मालका बीमा बिका हुआ था। दूसरे लोगोंने बीमा कम्पनियोंसे इस समय खूब रुपये वसूल किये, जितना माल था उससे भी अधिकका बतला दिया। आपसे भी कहा गया। आप भी उस समय अच्छी कमाई कर सकते थे, पर आपने एक कौड़ी भी अधिक नहीं ली। रेलवे और पोस्ट आफिसका यदि एक पैसा भी आपके यहाँ भूलसे अधिक आजाता था तो उसे वापिस किये बिना आपको चैन नही पड़ती थी। रिश्वत देनेका आपको त्याग था। इसके कारण आपको कभी-कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था, पर आप उसे चुपचाप सह लेते थे।

पंडितजीको कोई भी व्यसन नहीं था। खाने पीने की शुद्धता पर आपको अत्यधिक ख्याल था। खाने पीनेकी अनेक वस्तुएँ आपने छोड़ रखी थीं। इस विषयमें आपका व्यवहार बिलकुल पुराने ढंगका था। आपका रहन-सहन बहुत ही सादा था। कपड़े आप इतने मामूली पहनते थे कि अपरिचित लोग आपको कठिनाईसे पहचान सकते थे।

धर्मकार्योंके द्वारा आपने अपने जीवनमें कभी एक पैसा भी नहीं लिया। यहाँ तक कि इसके कारण आप अपने प्रेमियोंको दुखी तक कर दिया करते थे, पर भेंट या बिदाई तो क्या, एक दुपट्टा या कपड़ेका टुकडा भी ग्रहण नहीं करते थे। हाँ, जो कोई बुलाता था, उससे आने-जानेका किराया ले लिया करते थे।

## उत्साह और लगन

पंडितजीमें गजबका उत्साह और गजब की काम करने की लगन थी। पिछले दिनोंमें उनका शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था, पर उनके उत्साहमें जरा भी अन्तर नहीं पड़ा था। वे धुनके पक्के थे। जो काम उन्हें जच जाता था, उसे वे करके छोड़ते थे। उन्हें अपनी शक्तियों पर विश्वास था। इस कारण वे कठिनसे कठिन काममें हाथ डाल देते थे। मोरेनामें पाठशाला की इमारत उनके इसी गुणके कारण बनी थी। लोग नहीं चाहते थे कि मोरेना जैसे अयोग्य स्थानमें इमारत जैसा स्थायी काम हो, पर उन्हें विश्वास था कि पाठशालाका ध्रुव फंड एक लाख रुपयेका हो जायगा और तब मोरेनामें भी पाठशालाका काम मजेसे चलता रहेगा। कहते है कि पंडितजी अन्तिम समय तक यह कहते रहे कि यदि एक बार अच्छा होजाउँ, तो एक लाख रुपया पूरा कर डालूँ और फिर सुखसे परलोक की यात्रा करूँ।

## निर्भीकता

पंडितजी जिस बातको सत्य मानते थे, उसके कहनेमें उन्हें जरा भी संकोच या भय नहीं होता था। खतौलीके दस्सा और बीसा अग्रवालोंके बीचमें जो पूजाके अधिकारके सम्बन्धमें मामला चला था, उसमें आपने निर्भीक होकर साक्षी दी थी कि दस्सोंको पूजा करनेका अधिकार है। जैन जनताका विश्वास इससे बिलकुल उल्टा था। परन्तु आपने इसकी जरा भी परवाह नहीं की। इस विषयको लेकर कुछ 'धर्मात्माओं' और 'सेठों' ने बड़ा ऊधम मचाया, पंडितजीको हर तरहसे बदनाम करनेकी कोशिशें कीं, परन्तु अन्तमें जनताने पंडितजीके सत्यको समझ लिया और वह शान्त हो गई। इसके बाद 'मांसभोजी भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है या नहीं' 'इस विषयमें भी पंडितजीने एक 'अप्रिय सत्य कहा था, और उस

गुरुजी

गुरुजीका अध्ययन तथा शयन कक्ष

गुरुजीके मकान और दुकानका बाहरी दृश्य

गुरुजीके मकान और दुकानका भीतरी दृश्य

वह हाल जिसके एक प्रकोष्ठमें गुरुजी अध्यापन करते थे।

गुरुजीके हस्ताक्षर

पर भी बड़ी उछल कूद मची थी । इस विषयमें वे जैन समाजके वर्तमान पंडितोंसे बहुत ऊँचे थे । हमने प्रतिष्ठाएँ कराने वाले एक प्रतिष्ठित पंडितजीको छापेके विरोधी धनियोंके सामने छापेकी घोर निन्दा करते और छापेवालोंके सामने उसीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते देखा है । ऐसे लोग वही बात कहते हैं, जो लोगोंको अच्छी लगती है, पर पंडितजी बड़े निर्भीक थे । चापलूसी और खुशामदसे उन्हें चिढ़ थी । वे बड़े-बड़े लखपतियों और करोड़पतियोंको उनके मुँह पर खरी-खरी सुना दिया करते थे । इसी स्वभावके कारण अनेक धनी उनके शत्रु बन गये थे ।

## प्रगाढ़ श्रद्धा

जैन ग्रन्थोंपर पण्डितजीकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी, बल्कि सत्यके अनुरोधसे कहना पड़ेगा कि जरूरतसे ज्यादा थी । एक बार आपने जोशमें आकर यहाँतक कह डाला कि यदि कोई पुरुष जैन भूगोलको असत्य सिद्ध कर देगा, तो मैं उसीदिन जैनधर्मका परित्याग कर दूँगा । इससे पाठक जान सकेंगे कि उनकी श्रद्धा कितनी ऊँची चढ़ी हुई थी । इस श्रद्धाके अतिरेक के कारण ही जैन पाठशालाओंके कोर्सके द्वारपर 'दिगम्बर जैनधर्मसे अविरुद्ध' की मजबूत अर्गला लगाई गई थी । पण्डितजी नहीं चाहते थे कि किसी भी जैन पाठशालामें कोई ऐसी पुस्तक पढ़ाई जाय तो जैनधर्मके विरुद्ध हो । उन्होंने अपने विद्यालयमें भूगोल, इतिहास आदि विषयोंको कभी जारी नहीं होने दिया । अजैनोंके संस्कृत ग्रन्थ भी, यहाँतक कि व्याकरण, काव्य, नाटक आदि भी पढ़ाना पसन्द न था । काशीकी पाठशालाके विद्यार्थी गवर्नमेण्टकी संस्कृत परीक्षाके ग्रन्थ पढ़ा करते थे । इसपर पण्डितजीने जैनमित्रमें 'काशीका कटुक फल' शीर्षक बड़ा ही कड़ा लेख लिखा था । सिद्धान्त विद्यालयके किसी भी विद्यार्थीने विद्यालयमें रहते हुए कोई भी सरकारी परीक्षा नहीं दी ।

आजकलके पण्डितोंको हम जीते-जागते या सजीव शास्त्र समझते हैं । उन्हें शास्त्र याद भर रहता है, विचार करना वे नहीं जानते । जड़ शास्त्रोंमे जो उपकार होता है, वही उपकार इनसे होता है, इससे अधिक नहीं । पर पण्डितजी इस विषयमें अपवाद थे । वे अच्छे विचारक थे । वे अपनी विचार-शक्तिके बलपर पदार्थका स्वरूप इस ढंगसे बतलाते थे कि उसमें एक नूतनता मालूम होती थी । उन्होंने जैन सिद्धान्तकी ऐसी अनेक गाठें सुलझाई थीं, जो इस समयके किसी भी विद्वान्से नहीं खोली जा सकती थी । वे गोम्मटसारके प्रसिद्ध टीकाकार पं० टोडरमल्लजीकी भी कई सूक्ष्म भूलें बतलाने में समर्थ हुए थे । जैन भूगोलके विषयमें उन्होंने जितना विचार किया था और इस विषयको सच्चा समझानेके लिये जो-जो कल्पनाएँ की थीं, वे बड़ी ही कुतूहलवर्धक थीं । एक बार उन्होंने उत्तर दक्षिण ध्रुवोंकी छः महीनेकी रात दिनको भी जैन भूगोलके अनुसार सत्य सिद्ध करनेका यत्न किया था । वर्तमानके यूरोप आदि देशोंको उन्होंने भरतक्षेत्रमें ही सिद्ध किया था और शास्त्रोक्त लम्बाई-चौड़ाईसे वर्त्तमानका मेल न खानेका कारण पृथिवीका वृद्धि-ह्रास या घटना बढ़ना 'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ' आदि सूत्रके आधारसे बतलाया था । यदि पंडितजीके विचारोंका क्षेत्र केवल अपने ग्रंथोंकी ही परिधिके भीतर कैद न होता, सारे ही जैनग्रन्थोंको प्राचीनों और अर्वाचीनोंको वे केवली भगवान की ही दिव्यध्वनिके सदृश न समझते होते, तो वे इस समयके एक अपूर्व विचारक होते, उनकी प्रतिभा जैनधर्म पर एक अपूर्व ही प्रकाश डालती और उनके द्वारा जैन समाजका आशातीत कल्याण होता ।

## निस्वार्थ सेवा

पंडितजीकी प्रतिष्ठा और सफलताका सबसे बड़ा कारण उनकी निःस्वार्थ सेवाका या परोपकारशीलता का भाव था । एक इसी गुणसे वे इस समयके सबसे बड़े जैन पंडित कहलाये । जैन समाजके लिये उन्होंने अपने जीवनमें जो कुछ किया उसका बदला कभी नहीं चाहा । जैनधर्मकी उन्नति हो, जैनसिद्धान्तके जाननेवालोंकी संख्या बढ़े, केवल इसी भावनासे उन्होंने निरन्तर परिश्रम किया । अपने विद्यालयका प्रबंधसम्बन्धी तमाम कामकरनेके सिवाय अध्यापन कार्य भी उन्हें करना पड़ता था । हमने देखा है कि शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा जिस दिन पंडितजीको अपने कम-से-कम चार घंटे विद्यालयके लिए न देने पड़ते हों । जिन दिनों पंडितजीका व्यापार सम्बन्धी काम बढ़ जाता था और उन्हें समय नहीं मिलता था, उस समय बड़ी भारी थकावट होजाने पर भी वे कभी-कभी १०, ११ बजे रातको विद्यालय में आते थे । गत कई वर्षोंमें पंडितजीका शरीर बहुत शिथिल हो गया था । फिर भी धर्मके कामके लिए वे बड़े-बड़े लम्बे सफर करने से भी नहीं चूकते थे । अभी भिन्डके मेलेके लिए जब आप गये, तब आपका स्वास्थ्य बहुत ही चिंतनीय था और वहाँ जानेसे ही, इसमें सन्देह नहीं कि आपकी घटिका और जल्दी आ गई ।

पंडितजीकी निःस्वार्थ वृत्ति और दयानतदारी पर लोगोंको दृढ़ विश्वास था। यही कारण है जो बिना किसी स्थिर आमदनीके वे विद्यालयके लिये लगभग दस हजार रुपया साल की सहायता प्राप्त कर लेते थे।

## कौटुम्बिक विपदाएं

पंडितजीको, जहाँ तक हम जानते हैं कुटुम्बसंबंधी सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषयमें हम उन्हें ग्रीसके प्रसिद्ध विद्वान सुकरातके समकक्ष समझते हैं। पंडितानीजीका स्वभाव बहुत ही कर्कश, क्रूर, कठोर, जिद्दी और अर्धविक्षिप्त था। जहाँ पंडितजीको लोग देवता समझते थे, वहाँ पंडितानीजी उन्हें कोड़ी कामका आदमी नहीं समझती थीं। वे उन्हें बहुत तंग करती थीं और इस बातका जरा भी खयाल न रखती थीं कि मेरे बर्तावसे पंडितजी की कितनी अप्रतिष्ठा होती होगी। कभी-कभी पंडितानीजीका धावा विद्यालय पर भी होता था और उस समय छात्रोंतक की शामत आ जाती थी। अभी पंडितजी जब आगरेमें बहुत ही सख्त बीमार थे, तब पंडितानीजी की विक्षिप्तता इतनी बढ़ गई थी कि छात्रोंको उनके आक्रमणसे पंडितजीका जीवन बचाना भी कठिन हो गया था। वे बड़ी मुश्किलसे पिंड छुड़ाकर उन्हें अपने घरसे बेलनगंज ले गये थे। सारा समाज आज जिनके लिए रो रहा है, उनके लिये पंडितानीजी की आँखसे शायद एक आँसू भी न पड़ा होगा। इस अप्रिय कथाके उल्लेख करनेका कारण यह है कि पंडितजी इस निरन्तर यातनाको, कलह को, उपद्रवको बड़ी धीरतासे बिना उद्वेगके भोगते थे और अपने कर्त्तव्यमें जरा भी शिथिलता नहीं आने देते थे और यह पण्डितजीका अनन्य साधारण गुण था। सुकरातकी स्त्री खिसियानी हुई बैठी थी, सुकरात कई दिनके बाद घर आये। खाने-पीनेकी वस्तुओंका इन्तजाम किये बिना ही वे घरसे चले गये थे और कहीं लोकोपकारी व्याख्यानादि देनेमें लग कर घरकी चिन्ता भूल गये थे। पहले तो श्रीमतीने बहुत सा गर्जन-तर्जन किया, पर जब उसका कोई भी फल नहीं हुआ तब उसका वेग निःसीम हो गया और उसने बर्फ जैसे पानीका एक घड़ा उस शीतकालमें सुकरातके ऊपर औंधा दिया। सुकरातने हँसकर कह दिया कि गर्जनके बाद वर्षण तो स्वाभाविक ही है। पण्डितजीके यहाँ इस प्रकारकी घटनाएं, यद्यपि वे लिखनेमें इतनी मनोरंजक नहीं हैं अक्सर हुआ करती थीं और पण्डितजी उन्हें सुकरातके ही समान चुपचाप सहन किया करते थे।

विद्यालयसे पंडितजीको बहुत मोह हो गया था। उसे तो वे अपना सर्वस्व समझते थे। पण्डितजी बड़े ही स्वाभिमानी थे। किसीसे एक पैसेकी भी याचना करना उनके स्वभावके विरुद्ध था। शुरू-शुरूमें जब मैं सिद्धान्त विद्यालयका मन्त्री था, पण्डितजी विद्यालयके लिये सभाओंमें सहायता मांगनेके सख्त विरोधी थे, पर पीछे पंडितजीका यह सख्त अभिमान विद्यालयके वात्सल्यकी धारामें गल गया और उसके लिए 'भिक्षां देहि' कहनेमें भी उन्हें संकोच नहीं होने लगा।

## अन्य विशेषताएं

पण्डितजी बहुत सीधे और भोले थे। उनके भोलेपनसे धूर्त लोग अक्सर लाभ उठाया करते थे। एकाग्रताका उन्हें बहुत ही ज्यादा अभ्यास था। चाहे जैसे कोलाहल और अशान्तिके स्थानमें वे घण्टों तक विचारोंमें लीन रह सकते थे। स्मरणशक्ति भी उनकी बड़ी विलक्षण थी। बरसों की बातें वे अक्षरशः याद रख सकते थे। विदेशी रीति रिवाजोंसे उन्हें अरुचि थी। जब तक कोई बहुत जरूरी काम न पड़ता था तब तक वे अंग्रेजीका उपभोग नहीं करते थे। हिन्दीसे उन्हें बहुत ही ज्यादा प्रेम था। अन्य पण्डितोंके समान वे इसे तुच्छ दृष्टिसे नहीं देखते थे। उनके विद्यालयकी लायब्रेरीमें हिन्दीकी अच्छी-अच्छी पुस्तकोंका संग्रह है। पण्डितजी बड़े देशभक्त थे। 'स्वदेशी' आन्दोलनके समय आपने 'जैनमित्र' के द्वारा जैन समाजमें अच्छी जागृति उत्पन्न की थी।

मनुष्यके स्वभाव और चरित्रका अध्ययन करना बहुत कठिन है और जब तक यह न किया जाय, तब तक किसी पुरुषका चरित्र नहीं लिखा जा सकता। पण्डितजीके सहवासमें थोडे समय ( छः सात महीने ) रहकर हमने उनके विषयमें जो कुछ जाना था उसीको यहाँ सिलसिले मे लिख दिया है।

—जैन हितैषी, अप्रैल १९१७

●

# अन्तिम सत्रह वर्ष

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री भू० पू० अध्यक्ष भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्
प्राचार्य—स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनी, वाराणसी

●

गुरुवर्य गोपालदासजीका स्वर्गवास केवल ५१ वर्षकी अवस्थामें हो गया था। उनके जीवनके अन्तिम त्रिभाग—१७ वर्षोंकी एक झलक यहाँ प्रस्तुतकी जाती है। वस्तुतः यही काल उनके जीवनका उल्लेखनीय काल था। इसी कालमें वह भाई गोपालदाससे स्याद्वादवारिधि, न्याय वाचस्पति, वादिगज केसरी, गुरुवर्य पं० गोपालदास बने। इसी कालमें उनकी विद्वत्ता, समाज सेवा और प्रखर वक्तृत्व शक्तिका लोहा मान्य हुआ। इसी कालमें उनकी कीर्तिपताका फहराई और विरोधका भी प्राबल्य रहा। इसी कालमें उन्होंने मोरेनामें जैन सिद्धान्त विद्यालयकी स्थापनाके द्वारा गोम्मटसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थराजवार्तिक और पञ्चाध्यायी जैसे महान् जैन ग्रन्थोंके पठन-पाठनकी प्रणालीको प्रवर्तित करके दिगम्बर जैन समाजमें जैन सिद्धान्तके वेत्ता विद्वानोंकी परम्पराको जन्म दिया।

## बम्बई प्रान्तिक सभा और गुरुजी

गुरुजीका सामाजिक जीवन बम्बईसे आरम्भ होता है। बम्बईमें एक स्थानीय दिगम्बर जैन सभा थी। उसी सभाके द्वारा बम्बई प्रान्तिक जैन सभाकी स्थापना हुई और गुरुजीके सम्पादकत्व में मासिक पत्रके रूपमे जैनमित्रका प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। उस समय इस सभाके अधिवेशन महाराष्ट्र और गुजरातमें बड़े शानदार हुए। और उनसे सामाजिक और धार्मिक जागृतिको बड़ा बल मिला। उस समयके प्रायः प्रत्येक अधिवेशनमें गुरुजी सम्मिलित होते थे और उनके भाषणोंकी धूम रहती थी। वह इस सभाके महामन्त्री भी थे और इस प्रकार एक तरहसे बम्बई प्रान्तिक सभा उनके कार्यके लिए प्रधान क्षेत्र बन गई थी। इसी सभाके संचालकोंकी दूर दृष्टि और प्रयत्नसे भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटीकी स्थापना हुई थी। इसी सभाके अन्तर्गत बम्बईमें एक संस्कृत जैन विद्यालय भी चलता था, जिसके छात्रोंमें स्व० पं० लालारामजी भी थे। यह सब गुरुजीकी प्रेरणाका ही फल था।

## जैनमित्र और गुरुजी

बम्बई प्रान्तिक सभाके मुखपत्रके रूपमें जनवरी १९०० में जैनमित्रका प्रथम अंक प्रकाशित हुआ था। यह मासिक था। डिमाई आकारके १६ पृष्ठ रहते थे। सातवें वर्षसे यह पाक्षिक हो गया और आठवें वर्षसे इसका वही आकार हो गया जिस आकारमें वह आज भी प्रकाशित होता है। गुरुजीका नाम सम्पादक रूपमें १५ जुलाई १९०८ तक के अंकोंके मुख पृष्ठ पर मुद्रित है, आगे नहीं।

उस कालमें जैन समाचार नामक कोई स्तम्भ नहीं था। यदि कोई समाचार होता था तो कहीं भी छाप दिया जाता था।

बम्बईमे हिन्दीकी छपाई पहलेसे ही सुन्दर होती थी इसका प्रत्यक्ष प्रमाण जैनमित्रके पुराने अंक हैं। जैन-मित्रकी उस समयकी भाषा भी परिमार्जित थी। इसका कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध लेखक और प्रकाशक श्री नाथूरामजी प्रेमी जैनमित्रमें कार्य करते थे और जब गुरुजीने सम्पादन भारसे मुक्ति ली तो प्रेमीजी उसके सहायक सम्पादक थे किन्तु उनका नाम नहीं छपता था। प्रेमीजीकी दृष्टि और लेखनी प्रारम्भसे ही बड़ी परि-मार्जित थी। उन्होंने अपने कार्यकालमें जैनमित्रको अच्छी सामग्री प्रदान की।

गुरुजीकी भाषा भी कोरी पण्डिताऊ भाषा नहीं थी, किन्तु पाण्डित्यको लिए हुए सुसंस्कृत भाषा थी। वह जो कुछ लिखते उसमें तार्किकताका पुट रहता था। उस समय भी आजकलकी तरह सामाजिक और धार्मिक विवाद चलते

थे किन्तु सामाजिक विवादोंकी अपेक्षा धार्मिक विवादोंका बाहुल्य रहता था और गुरुजी बराबर उसमें योगदान करते थे। निर्माल्य चर्चा तेरहपन्थ बीस पन्थकी चर्चा आदि उस समय भी चलती थीं। इन चर्चाओंमें सबसे प्रमुख भाग रहता था शोलापुरके सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजीका। उनके लेख प्रमाण पुरस्सर होते थे। उन्हें पढ़नेसे ऐसा लगता है कि उनका शास्त्रज्ञान परिमार्जित था और वह तेरह पन्थके पक्षपाती थे।

गुरुजीने 'उन्नति' शीर्षक से एक लेख माला भी चालूकी थी उसका प्राप्त अंश इसी ग्रन्थमें अन्यत्र मुद्रित है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि गुरुजी 'एक जैनी' आदि नामोंसे भी प्रचलित विवादों पर लिखते थे। विरोधसे वह घबराते नहीं थे। जैनमित्रके प्रथम वर्षके अंक ६ मे उन्होंने 'उन्नतिका मार्ग विरोधके दांतोंमें होकर है' शीर्षक सम्पादकीय लिखा था।

## महासभा और गुरुजी

महासभाकी स्थापनाके पश्चात् उसकी प्रगतिमें गुरुजीका बहुत सहयोग था। वह उसकी अभ्युन्नति और प्रगति के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे महासभाके महाविद्यालयके वह महामन्त्री भी थे। किन्तु महाविद्यालयमें पाश्चात्य शिक्षा प्रणालीको लेकर गुरुजीका महासभाके एक वर्गसे तीव्र विरोध चलता था। महासभाका महाविद्यालय उस समय वर्षों तक पारस्परिक खींचातानीका ऐसा अखाड़ा बन गया था कि उसकी दशा पढ़कर आज भी खेद हो आता है।

गुरुजी जब बम्बई छोड़कर मोरेनामें रहने लगे तो उन्होंने वहाँ जैन सिद्धान्त पाठशालाकी स्थापनाकी। उसके सम्बन्धमें उन्होंने जो विज्ञप्ति प्रकाशितकी थी उसे जैनमित्र [ ९-१०-१९०७ ] से नीचे उद्धृत किया जाता है।

## मुरेनामें नवीन पाठशालाकी स्थापना

'बहुत दिनोंसे इस कामको प्रारम्भ करना चाहते थे। परन्तु प्रत्येक कार्यकी सिद्धि तथा प्रारम्भमें काल भी एक कारण है। वह हमारा कार्य जिसका कि बहुत दिनोंसे विचार तथा पुरुषार्थ करते थे, आज दिन शुरू हो गया। इस कार्यको जिस प्रकार शुरू करना चाहते थे उसी प्रकारसे शुरू हुआ है। अब भी देवाधिदेवसे प्रार्थना इस विषयकी करते हैं कि इस कार्यके बाधक कारण आपके स्मरण तथा स्तवन से उत्पन्न हुए पुण्यके द्वारा विलयको प्राप्त हों जिससे यह कार्य प्रतिदिन निर्विघ्न वृद्धिको प्राप्त होता रहे।

इस पाठशालामें सम्पूर्ण कार्योंकी योजना इस प्रकार है—पाठशालामें अध्यापक अवैतनिक है। विद्यार्थी अपनी स्कालर्शिपका प्रबन्ध जिस प्रकार सुभीता हो सकै उसी प्रकार दूसरे स्थानोंसे करते हैं। मकान, रसोइया तथा खिदमतगारका प्रबन्ध यहाँ पर कर रखा है। इसमें ६) रु० माहवार प्रत्येक विद्यार्थीसे लेकर भोजन कराया जाता है। धर्मशास्त्र, काव्य, न्याय और व्याकरण की पढाईका क्रम नीचे लिखेंगे। जिस विद्यार्थीकी जैसी योग्यता हो वह उसी कक्षामें भर्ती किया जाता है। जैनधर्म शास्त्रके रहस्यके जिज्ञासु विद्यार्थियोंको जरूर आना चाहिए। इस कार्यको वृद्धिगत करनेमें हम प्रतिदिन प्रयत्न करते हैं। इस प्रबन्धमें विद्यार्थी तथा धनकी जिस प्रकार सम्पत्ति बढ़ेगी उसी प्रकार इस प्रबन्धकी तरक्की होती जायगी।'

श्री मती दिगम्बर जैन सिद्धान्त
पाठशाला ( मुरेना )
अस्याः पठनक्रमः

( शास्त्रीय कक्षायाः )

प्र० खण्डे एक वर्षे—गोम्मटसारस्य जीवकाण्डम्। राजवार्तिकालंकारस्य चतुरध्यायी वा।

द्वि० ,, ,,—गोम्मटसारस्य कर्मकाण्डम्।
राजवार्तिकावशिष्टपूर्णभागो वा

त्रि० ,, ,,—लब्धिसार क्षपणासारौ पञ्चाध्यायी वा।

( पण्डित कक्षायाः )

प्र० खण्डे एक वर्षे—पञ्चमाध्यायान्ता सर्वार्थसिद्धिः। पूर्णा न्यायदीपिका। चन्द्रप्रभस्याद्यं सर्गसप्तकम्।
अलंकार चिन्तामणि पूर्वभागश्च।

द्वि० खण्डे एक वर्षे—सर्वार्थसिद्धि पूर्णा, चन्द्रप्रभचरितं पूर्णम् । अलंकार चिन्तामणेरुत्तरभागः, सागारधर्मामृतम्, आलापपद्धतिः, प्रमेयरत्नमाला च ।

( प्रवेशिकायाः कक्षायाः )

प्र० खण्डे एक वर्षे—जैन व्याकरणस्य पूर्वार्द्धम्, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा च प्राग्लोकानुप्रेक्षायाः ।

द्वि० ,, ,,—तद्व्याकरणोत्तरार्द्धम्, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा पूर्णा च ।

यहाँ पर सायंकालमें विद्यार्थियोंको उपर्युक्त क्रमके अतिरिक्त बहीखाता वा उसकी फैलावट वगैरह भी सिखाई जाती है ।

प्रधानाध्यापक तथा प्रबन्धकर्ता
गोपालदास बरैया
मुरैना ( राज्य ग्वालियर )

## दस्सा काण्ड

गुरुजी बड़े प्रखर वक्ता, शास्त्रार्थी और तार्किक थे । अच्छे-अच्छे विद्वान् शास्त्रार्थ में उनका सामना नहीं कर सकते थे । अजमेरमें दर्शनानन्द सरस्वतीके साथ उनका जो शास्त्रार्थ हुआ, वह चिरस्मरणीय रहेगा । उसमें उनकी युक्तियोंके प्राबल्यकी सराहना सम्पादकाचार्य और प्रबल समालोचक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीने अपनी पत्रिका 'सरस्वती' में भी की थी । यह घटना सम्भवतया १९१२ की है । इसी समयके लगभग उनके जीवनकी सबसे महत्वपूर्ण घटना दस्सा बीसा कांड है । उसमें उन्होंने जिस निर्भीकता और साहसका परिचय दिया, वह एक विद्वान्के लिए गौरव और अभिमानकी वस्तु है । ऐसे सामूहिक प्रबल प्रतिरोधका सामना शायद ही कभी किसी जैन विद्वान्को करना पड़ा हो । कुछ लोग तो उनकी आनके ही नहीं, जानके भी ग्राहक बन गये थे । पं० देवकीनन्दनजी सुनाते थे कि हमारा काम था गुरुजीके साथ लट्ठ लिये हुए रहना । संक्षेपमें घटना इस प्रकार है—

देहलीके निकट, मेरठ जिलेके अन्तर्गत हस्तिनापुर नामक तीर्थस्थानमें प्रतिवर्ष कार्तिकीय अष्टान्हिकाके दिनोंमें बड़ा भारी मेला भरता है, जिसमें मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर आदि जिलोंकी जैन जनता एकत्र होती हैं । पहले कई स्थानोंके लोग अपने साथ मन्दिर और मूर्ति भी लाया करते थे ।

सन् १९०९ में इस मेलेके अवसर पर मेरठसे आये हुए मन्दिरजीमें अग्रवाल जैनोंकी एक बृहत् पंचायत हुई । प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि सरधना और खतौलीके दस्सा अग्रवाल जैन प्राचीन दस्तूर और धार्मिक रिवाजके विरुद्ध नई बात अर्थात् जिनेन्द्रमूर्तिकी प्रक्षाल पूजा करना चाहते हैं, यह कहाँ तक ठीक है ? अग्रवाल बिरादरीकी आम पंचायतसे यह निश्चित हुआ कि प्राचीन दस्तूर और रिवाजके विरुद्ध दस्सा जातिवाले नया दस्तूर नहीं चला सकते, यानी पूजा प्रक्षाल नहीं कर सकते ।

उक्त प्रस्ताव २६ नवम्बर १९०९ की रात्रिमें पास हुआ और ५ दिसम्बर १९०९ के दिन इस पंचायती फैसले-के कारण खतौलीके जैनोंमें मार-पीट हो गई । मामला फौजदारी कचहरी तक पहुँचा । अन्तमें लोगोंके समझानेसे १८ जनवरी १९१० को राजीनामा हो गया । इसके बाद ३ फरवरी १९१० को खतौलीके लाला माड़ेलालने सबजजी मेरठमें बीसा अग्रवाल जैनियोंके विरुद्ध नालिश कर दी ।

माड़ेलालके बैरिस्टर अब्दुल्लाशाहने अर्जीमें लिखा कि खतौलीके जैन मन्दिर मुहल्ला कानूनगोयानमें माड़ेलाल दस्सा अग्रवाल जैनीको प्रक्षाल, पूजासे रोकनेका कोई अधिकार बीसा अग्रवाल जैनियोंको न था । सब जज और हाईकोर्ट जजने फैसला दिया कि हस्तिनापुरकी पंचायतके सामने माड़ेलालने यह स्वीकार कर लिया था कि उसके पुरखोंने कभी पूजा नहीं की थी, किन्तु जैन शास्त्रोंमें इसका निषेध नहीं है और उसको पूजा प्रक्षालकी आज्ञा मिलनी चाहिये । इस बयानके ऊपर माड़ेलालका दावा और उसकी अपील खर्चे समेत खारिज कर दिए ।

इस मुकदमेमें माड़ेलालकी तरफसे दस्सा पूजाधिकारका समर्थन स्व० पं० गोपालदासजी और पं० जुगल-किशोरजी मुख्तारने किया । तथा बीसा पक्षकी ओरसे स्व० पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर और स्व० हकीम कल्याणरायने कहा कि पतित जातिके लिए पूजा अधिकारका निषेध है ।

सब जजके सामने बैरिस्टर अब्दुलाशाहके प्रश्न पर पं० गोपालदासजीने जबाब दिया, वह उर्दूमें लिखनेवालेने इस प्रकार लिखा—

'कई हजार वर्ष पहिले बमूजिब त्रिवर्णाचार जैनशास्त्रके सब लोग जिनाकार थे। उसके पीछे उन्हींकी औलादमें तीर्थकर वगैरह पैदा हुए, जिनकी मूर्ति पूजी जाती है। जिस त्रिवर्णाचारका मैंने हवाला दिया है, जिनसेनका बनाया हुआ है।'

इस बयानको छपवाकर वितरण किया गया और द्वेषाग्नि भड़क उठी। जगह-जगह पंडितजीके बहिष्कारका आन्दोलन किया जाने लगा, उनके मुखसे शास्त्रश्रवण न करनेकी प्रेरणाकी जाने लगी। इस विषयको लेकर अजमेरमें एक सभा हुई। इस सभामे पंडितजीको बुलानेका भी प्रयत्न किया गया, परन्तु आवश्यक कार्यवश पंडितजी नहीं जा सके और अपना प्रतिवादरूप एक वक्तव्य लिखकर भेज दिया। यहाँ हम उस प्रतिवादकी अविकल प्रतिलिपि 'सत्यवादी' पत्रसे दे रहे हैं, उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गुरुजीने दस्सोंके पक्षमें अपनी गवाहीमें क्या कहा था—

## प्रतिवाद

प्रिय सज्जनों और महानुभावों!

मुझे खेदके साथ लिखना पड़ता है कि सेठ साहबकी सूचनानुसार मैं आपके समक्ष उपस्थित नहीं हो सका। अतः अपने वक्तव्यको परोक्ष पत्र द्वारा उपस्थित करके आशा करता हूँ कि सर्व महाशय थोड़ी देरके लिये खुशामद और पक्षपातसे उपेक्षित होकर मेरे इस छोटेसे लेखको न्यायदृष्टिसे विचारपूर्वक पढ़ेंगे और सत्यासत्यका निर्णय करके सत्य पक्षको ग्रहण कर असत्य पक्षको घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे।

दस्से और बीसोंका मुकदमा सदर आला साहब मेरठकी अदालतमें था। बीसोंकी तरफसे पं० पन्नालालजी दस्सोंकी तरफसे मैं तलब कराया गया था। पं० पन्नालालजीने दस्सोंके पूजाधिकारके निषेधमें श्लोक पेश किये थे और इजहारोंमें यह भी कहा था कि व्यभिचारियोंकी सन्तान प्रति सन्तान अनन्तकाल बीतने पर भी कभी पूजनकी अधिकारी नहीं हो सकती है।

मैंने उसके विपक्षमें यह कहा था कि यह अशुद्धता हमेशा तक नहीं रहती है किन्तु थोड़े काल तक रहती है। यदि यह अशुद्धता हमेशाके लिये मानोगे तो इस अशुद्धताका प्रसंग तीर्थंकरोंमें भी आवेगा, क्योंकि छट्ठम छट्ठे कालमें राजा, धर्म और अग्निका सर्वथा लोप हो जाता है और सर्व मनुष्य पशुवत् नग्न और व्यभिचारी हो जाते हैं। उत्सर्पिणीके द्वितीय काल दुःषमामें २०,००० वर्ष तक कुलाचारका प्रचार नहीं होता है। १००० वर्ष शेष रहने पर कुलकरोंकी उत्पत्ति होती है और कुलकरोंके उपदेशसे विवाहादि कुलाचारका प्रचार होता है। इसके बाद जिस कुलमें १००० वर्ष तक शुद्धता रहती है, उसी कुलमें तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं और फिर उनकी प्रतिमादि बनाकर पूजी जाती है।

यह मेरा इजहार अदालतमें लगभग एक घंटे तक विस्तारपूर्वक हुआ था, इसलिये अदालतमें उसका सारांश लिखा गया है। इसी सारांशकी टीका हमारे सुयोग्य न्यायदिवाकरजीने लोगोंको यों समझाई है कि 'गोपालदासने महावीर स्वामी आदि तीर्थंकरोंको व्यभिचारियोंकी सन्तान कहा है। सो गोपालदासने हमारे पूज्य तीर्थङ्करों पर मिथ्यारोप करके जैन मजहबकी तौहीन की है।' जिससे हमारे बहुतसे भोले भाई आपेसे बाहर हो गये हैं। मैंने जो बयान ऊपर लिखा है, वह त्रिलोकसार ग्रन्थके आधार पर लिखा है जो आपसे छिपा नहीं है। पं० पन्नालालजीने जो नोटिसमें यह जाहिर किया कि, गोपालदासने शूद्रोंको भी पूजाका अधिकारी कहा है, सो आपके सम्मुख इजहार मौजूद है, बाँच लीजिये, उसमें क्या लिखा है। और जरा कृपा करके पं० पन्नालालजीके पेश किये श्लोकोंको भी बाँचिये, उनमें क्या लिखा है। धर्म संग्रह और 'पूजासार' दोनों ग्रन्थोंके श्लोक उन्होंने प्रमाणमें पेश किये थे, जिनमें साफ तौर पर शूद्रोंको पूजाका अधिकारी कहा है।

अन्तमें मेरी प्रार्थना है कि यह धर्मका मामला है, कुलियामें गुड़ फोड़कर भोले भाईयोंको अन्धकूपमें डालना न्यायसंगत नहीं हो सकता। इसलिये इस विषयमें पं० पन्नालालजीका और मेरा लिखित शास्त्रार्थ हो जाय और दोनों तरफके शास्त्रार्थके परचे समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हो जांय कि जिससे सर्वसाधारण विवादस्थ विषयको अच्छी तरह समझ लें। इतनी प्रार्थनाके बाद भी यदि आप कुलियामें गुड़ फोड़ें तो आपको अधिकार है कि अपनी स्वतंत्रताका उपयोग चाहें जिस प्रकार करें।

गोपालदास बरैया

गुरुजीके उक्त प्रतिवादसे उनकी निर्भीकता और विद्वत्ता दोनों ही व्यक्त होती हैं।

इस तरह जहाँ एक ओर उनके विरुद्ध आंदोलन चल रहा था, दूसरी ओर गुणग्राहक सज्जन उनका समादर भी करते थे। कलकत्तेके सुप्रसिद्ध अटर्नी बा० धन्नूलालजी अग्रवालने अपनी पूज्य माताके स्वर्गवासके उपलक्षमें एक स्मृति समारोह किया था। जैनियोंमें यह एक बिल्कुल अभिनव बात थी।

इस स्मृति समारोहमें बाबू धन्नूलालजीने पं० गोपालदासजी, बाबू अर्जुनलालजी सेठी, कुंवर दिग्विजयसिंहजी और पं० माणिकचन्दजी आदि विद्वानोंको बहुत आग्रह और सत्कारके साथ बुलवाया और कलकत्तेके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध जैनेतर विद्वानोंके समक्ष उनके जैनधर्म सम्बन्धी व्याख्यान कराये।

४ जून १९११ को जो सार्वजनिक सभा हुई, उसके सभापति महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण बनाये गये। इस सभामें स्याद्वाद वारिधि पं० गोपालदासजीका 'जैन सिद्धान्त'के विषय पर बड़ा ही महत्वपूर्ण भाषण हुआ। इस व्याख्यानकी प्रशंसामें जस्टिस सर गुरुदासजी बनर्जीने कहा—'मैंने आज जो परम तत्त्व पंडितजीके मुखसे सुने हैं, वे अत्यन्त गंभीर और महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे सुपंडित और सुवक्ताको धन्यवाद देना मेरे लिए आनन्दजनक है।' इसके पश्चात् महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषणने कहा—'हम स्याद्वादवारिधि, वादिगज केसरी पं० गोपालदासजीकी वक्तृता सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। मैं सारे बंगदेशकी ओरसे पंडितजीको धन्यवाद देकर कहता हूँ कि पंडितजीने जैनमतके कठिन तत्त्वोंको बहुत ही सरलतासे समझाया है। पंडितजीका तत्त्वज्ञान प्रगाढ़ है। आपकी अन्य धर्मोंकी खण्डन शैली बहुत सुन्दर और तर्कयुक्त है।' अन्तमें सभापतिजीने कहा—'मैं बड़ी प्रसन्नतासे कहता हूँ कि आज तक मुझे जैनधर्मका जानकार एक भी विद्वान् आप जैसा नहीं मिला। पंडितजीकी तत्त्व, द्रव्य, स्याद्वादनय, कर्म फिलासफी आदिकी धाराप्रवाह वक्तृता अद्वितीय है। मेरा अनुरोध है कि पंडितजीके व्याख्यानोंके लिये और भी सभाएँ की जायें।

उक्त घटनाके कुछ दिनों बाद ही 'जैनगजट' में कलकत्तेके ही एक जैन महाशयने एक लेख प्रकाशित कराया। उसका निष्कर्ष यह था कि 'जैनियोंमें जो अशान्ति फैल रही है, उसका प्रधान कारण पंडितजीको दी हुई स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी आदि उपाधियाँ हैं। यह भी बड़ा अन्याय है कि लोग उनके नामके साथ प्रातःस्मरणीय पंडितवर्य विद्वच्छिरोमणि आदि विशेषण जोड़ने लगे हैं, क्योंकि वे कहीं की परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हैं। अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिकादि कोई ग्रन्थ उन्होंने पढ़े नहीं हैं। लोगोंने छोटी-छोटी सभाओंमें सिद्धसाधक बनकर उनके पीछे यह पुछल्ले जोड़ दिये हैं, और इन पुछल्लोंका प्रयोजन दक्षिणके भोले सेठोंके समान उत्तरके पंडित सेठोंको जालमें फँसाना है।'
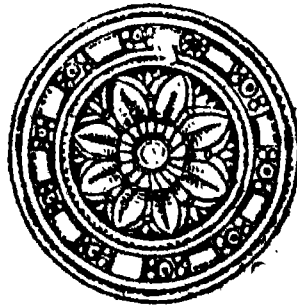
# गुरु गोपालदास : जीवन झाँकी

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, एम० ए० ( संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी ), पी-एच० डी०, डी० लिट्०
अध्यक्ष—संस्कृत-प्राकृत विभाग—एच० डी० जैन कालेज, आरा

●

## चिन्तित जगका अणु-अणु

मधुमासके पदार्पण करते ही चराचर नयी दीप्ति और नये उल्लाससे भर उठा। आम्र मञ्जरियाँ अपनी भीनी-भीनी गन्धसे प्रकृतिके अणु-अणुको भावविभोर बनाने लगीं। सुगन्धसे महमह खिले फूलभरी वनपंक्तियोंमें कोकिलकी मधुर-कूंज जनमानसमें अनुराग-अमृतकी धारा उड़ेलने लगी। मधूक पुष्पके परागके कणोंको लेकर पवन मधुमासका स्वागत करनेमें संलग्न हो गया।

पर आश्चर्य यह है कि प्रकृतिका यह मधुमय वातावरण भी हार्दिक अनुराग उत्पन्न करनेमें असमर्थ है। अत: आचार्यकल्प महापण्डित टोडरमलजीके उपरान्त एक सौ वर्षोंके बीच जैन समाजमें ऐसा सारस्वत नहीं जन्मा, जो अपनी असाधारण प्रतिभाके द्वारा सर्वत्र ज्ञानकी दुन्दुभि बजाकर जैनवाङ्मयका गौरव प्रतिष्ठित कर सके। वर्तमानमें 'निरालम्बा सरस्वती' है, अतएव समाजके साथ जगतका अणु-अणु भविष्यकी चिन्तासे आक्रान्त है।

## मुस्कुरा उठी मानवता

जगत्की चिन्ता अवगतकर मानवता मुस्कुराई। उसके अधरोंसे अस्फुट ध्वनि निकली—'जैनशास्त्रोंके अध्येताओंकी भगीरथ परम्पराका सूत्रपात होनेमें अब विलम्ब नहीं है। आगराके शीतलनाथ मन्दिरके पार्श्वमें एक मानपाड़ा मोहल्ला है। इसमें लाला लक्ष्मणदास बरैया निवास करते हैं। इन्हींके घर एक कुमार का जन्म होगा, जिससे जैनवाङ्मयके अनुशीलन-परिशीलनकी अनवच्छिन्न गंगोत्री निकल वंशीधर, माणिक्यचन्द, मक्खनलाल, देवकीनन्दन, उमरावसिंह रूप तटोंका स्पर्श करती हुई कैलाशचन्द्र, फूलचन्द्र और जगमोहन रूप सरोवरको प्राप्त होगी। सततवाहिनी इस स्रोतस्विनीके उक्त तट और सरोवर विश्राम स्थल नहीं होंगे, अपितु स्रोतस्विनीमें विकसित कमलकी गन्ध गणेशवर्णीके रूपमें अटकसे कटक तक और हिमालयसे कन्याकुमारी तक मानवताको त्राण प्रदान करेगी। उपन्यासमें रहनेवाली प्रतीक योजना जिस प्रकार कथानकको गतिशील बनाती है, दुरूह वर्णनोंमें सरसता उत्पन्नकर तत्त्वदर्शनकी प्रवृत्तियोंका उद्घाटन करती है, उसी प्रकार लक्ष्मणदासका यह नौनिहाल भी सामान्य घटनाओं, वस्तुओं और परिस्थितियोंका तात्त्विक दृष्टिसे विवेचन करेगा। अपने क्रान्तिकारी विचारों द्वारा बहुचर्चित होगा।

## उतर पड़ा आलोक धरा पर

रूपचन्द, भैया भगवतीदास, पाण्डे जिनदास, पाण्डे हेमराज, पं० द्यानतराय, भूधरमिश्र, भूधरदास, बुलाकीदास एवं कवि नथमल विलालाकी जन्मभूमि और कर्मभूमि तथा महाकवि बनारसीदासकी कविताभूमि आगराको बाबा शीतलनाथका अनुग्रह प्राप्त है। अनेक कवि और विद्वानोंको जन्म देनेका श्रेय आगराकी सूखी मिट्टीको सर्वदासे उपलब्ध रहा है, अत: सिद्धान्त ग्रन्थोंके पठन-पाठनकी उच्छिन्न परम्पराको पुन: संस्थापित करनेवाले पं० गोपालदासको जन्म देनेका गौरव अन्य स्थानको प्रदान करना आगराकी भूमिको स्वीकार नहीं था। फलत: वि० सं० १९२३ की चैत्र कृष्ण द्वादशीके दिन लाला लक्ष्मणदासजीके घर एक प्रकाशपुञ्जने जन्म ग्रहण किया। माताकी ममताके मेरु और पिताकी आशाके केन्द्र इस बालकका नाम गोपालदास रखा गया। कालिन्दीके तटपर बालक्रीड़ा करनेवाला यह गोपालदास बचपनसे ही असाधारण प्रतिभाशाली था। उसकी बालक्रीड़ाओंमें साहित्य और संस्कृतिकी अरुणिमा दिखलायी पड़ती थी। उसकी विलक्षण बाल सुलभ चेष्टाएँ भविष्यके गौरवकी अभिव्यञ्जना कर रही थीं। वसन्तकी मनभावनी ऋतु नैसर्गिक सुषमाको विकीर्ण कर नवजात शिशुकी भाल लिपिको पढ़नेकी चेष्टा कर रही थी। निमित्तज्ञानी और ज्योतिर्विदोंने भविष्यवाणियाँ कीं—शिशु

असाधारण ज्ञानी होगा, इसके गौरव-गरिमायुक्त जीवनका स्पर्श पा मूँक व्यक्ति भी वाचाल हो जायगा। जो एक शब्दका भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता है, वह पण्डित बन जायगा। गोम्मटसार, त्रिलोकसार और लब्धिसारकी चर्चा घर-घर होने लगेगी। अब पण्डित टोडरमलजीके रिक्त स्थानकी पूर्ति होनेका समय आचुका है। इस देवोपम व्यक्तित्वको पाकर माता-पिता या आगराका समाज ही अहोभागी नहीं है, किन्तु समस्त जैन समाजके लिए यह प्रकृतिका अनुपम वरदान होगा। शताब्दियों तक इतिहास इस व्यक्तिके गुणोंका अमर अंकन करता रहेगा। सर्वत्र इसके ज्ञानका सौरभ व्याप्त होकर जनमानसको तृप्ति प्रदान करेगा। उज्जवल अतीत साकार हो जायगा। हिमशीतलकी सभामें ताराको पराजित करने-वाले अकलंकके अद्भुत ज्ञान और आध्यात्मिक पराक्रमका समन्वय इस बालकमें उपलब्ध होगा।

ज्योतिर्विदोंकी उक्त वाणीको सुनकर परिवारके व्यक्तियोंको अपार हर्ष हुआ। माताने पुत्रकी दिव्यछविका जीभर कर पान किया। पिता शिशुकी मंगल कामना करनेके हेतु 'णमोकार मन्त्र' का चिन्तन करने लगे। शिशु माता-पिताके स्नेहको प्राप्तकर द्वितीयाके चन्द्रमा के समान वृद्धिगत होने लगा।

## सहना पड़ा वियोग पिता का

जिस प्रकार पाटल-पुष्पका संवर्द्धन कण्टकोंके बिना संभव नहीं, उसी प्रकार महान् व्यक्तित्वका विकास भी विपत्तियोंके अभावमें नहीं होता है। 'चन्दन' घर्षित होने पर ही सुगन्ध उत्पन्न करता है, व्यक्ति भी कष्टोंके बीच महान् बनता है। अभी गोपालदासको नेत्रोन्मीलन किये दो ही वर्ष हुए थे, शिशुने सम्यक् रूपसे पिताको पहचाना भी नहीं था कि अकस्मात् लाला लक्ष्मणदासको मृत्युका निमन्त्रण मिल गया। आयुकर्म रूपी रस्सी छिन्न हो गयी और गोपालदास पितृसुखसे सदाके लिए वंचित हो गये। माँने सिर पीट लिया, परिवारके व्यक्ति करुण क्रन्दन करने लगे। अबोध शिशु माँ की इस अनिर्वचनीय पीड़ाको न समझ सका। उसके हाथकी चूड़ियाँ और माँगका सिन्दूर कालिन्दीकी भेंट चढ़ा दिये गये। अब वह रंगीन वस्त्रोंके स्थान पर धौत वस्त्र धारण करने लगी। उसकी समस्त जीवन आकांक्षाएँ पतिकी चिताके साथ जलकर भस्म हो गई। पुत्रके लालन-पालनका दायित्व उसे कर्त्तव्यकर्म करनेके लिए प्रेरित करने लगा।

अबोध गोपालदास हँसकर माताके मनको ममतामें बाँधने लगा। उसकी तोतली वाणी माताको संबल देने लगी। उसने निश्चय किया, जीवन रोनेके लिए बना है। मेरे रोनेका प्रभाव इस सुकुमार बालकपर भी पड़ता है। अतः अब हृदयको कड़ा कर कर्त्तव्यमार्गमें जुट जाना चाहिए। पतिके अभावमें अब गोपालदासकी शिक्षा-दीक्षाका भार भी मेरे ही ऊपर है। अतएव गोपालदासको ज्ञानका गौरीशंकर बनाना है। जीवनकी समस्त उपलब्धियाँ कुमारके सम्मुख उपस्थित कर देनी है।

गोपालदासका विद्यारंभ संस्कार सम्पन्न हुआ। माँने अपने सीमित साधनोंके बीच बच्चे की शिक्षाकी पूर्ण व्यवस्था की। गोपालदास स्वभावतः क्रीड़ाप्रिय थे, पर थे तीव्र-बुद्धि। अंग्रेजी और गणित दोनों ही विषय इनको प्रिय थे, फलतः इन विषयोंमें इन्होंने अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया। जिस-किसी प्रकार इन्होंने मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्ण की। इनकी यह किशोर अवस्था महनीय नहीं थी, इस अवस्थाके गोपालदासको देखकर कोई यह अनुमान भी नहीं कर सकता था कि यही व्यक्ति गुरु गोपालदास हो जायगा, इसी शिल्पीके स्पर्शमात्रसे कोटि-कोटि मानव ज्ञानी बन सम्यग्ज्ञानका अलख जगायेंगे। सन्तान युग-युगोंतक कृतज्ञतावश अवनत हो इसका नाम जपेगी। अगणित शास्त्री और आचार्य साक्षात् या परम्परया शिष्यत्व स्वीकार कर अपने जीवनको धन्य समझेंगे, सरस्वती अपने इसी लाड़लेपर सर्वाधिक स्नेह वर्षा करेगी।

## बस गया संसार

गोपालदासकी शिक्षा अधिक दिनोंतक न चल सकी और घरेलू एवं आर्थिक परिस्थितियोंने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। माँकी साध पुत्रवधू प्राप्त करनेकी थी, वह पूरी हो गयी। गोपालदासजीका विवाह १९ वर्षकी अवस्थामें सम्पन्न हो गया। इन्हें २२ वर्षकी अवस्थामें प्रथम पुत्रलाभ हुआ। माता पौत्रका मुख देखकर प्रसन्नतासे भर गयी, घरमें उत्सव मनाया जाने लगा। विधिका विधान कुछ और ही था, जिस नौनिहालको लेकर खुशियाँ मनायी जा रही थीं, जो बरैया परिवारका आलोक स्तम्भ था, वह एक दिन चल बसा। गोपालदासको पुत्रवियोगका दुःख सहन करना पड़ा। विचारशील, कर्त्तव्यपरायण और संसारकी वास्तविक परिस्थितिके ज्ञाता गोपालदासपर इस स्थितिका प्रभाव अधिक नहीं पड़ा। वे हिमालयकी उस चट्टानके समान अडिग थे, जो गर्मी और सर्दीको समानरूप सहन करती है; जिसे शीत, आतपकी तो बात ही क्या, झंझावात भी विचलित करनेमें असमर्थ रहता है।

वि० सं० १९४७ में अर्थात् २४ वर्षकी अवस्थामें एक कन्यारत्नकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम कौशल्याबाई रखा गया। गोपालदासकी माँ पौत्रीको अपार स्नेह करती थीं और वे कौशल्याको उभयकुल मङ्गलदायक मानती थीं। वि० सं० १९४९ अर्थात् २६ वर्षकी अवस्थामें एक पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम माणिकचन्द रखा गया। कुछ दिनोंके पश्चात् किसी रोगविशेषके कारण माणिकचन्दकी एक आँख खराब हो गयी। गोपालदासजीने पुत्र माणिकचन्दकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया, पर भाग्यने साथ नहीं दिया। फलतः माणिकचन्द शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका।

श्री पं० गोपालदासजीका यह संसार—गार्हस्थिक जीवन सुखमय नहीं था। पत्नीका उग्र-स्वभाव एवं माणिक-चन्दकी अज्ञानता उनके लिए शल्यतुल्य थे, पर वे अपने आन्तरिक बोधके प्रकाशमें सब कुछ धैर्यपूर्वक सहन कर लेते थे। उनके सम्यक्त्व विवेक और चारित्र्य सर्वदा जाज्वल्यमान थे, जिससे उन्हें कभी किसी प्रकारके कष्टका अनुभव नहीं हुआ।

## पावन-भू अजमेरकी जीवन-ज्योति बनी

गृहस्थीका भार आते ही गोपालदासको व्यवसायकी चिन्ता हुई। उन्नीस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अजमेरमें रेलवेके कार्यालयमें नौकरी कर ली। अल्हड़ युवकके समान आप अपने ही कार्योंमें व्यस्त रहते थे और अपनी ही आवश्यकताओंके घेरेमें आवद्ध थे। समाज, संस्कृति और साहित्यके कार्योंमें आप भाग नहीं लेते थे। धर्म एवं संस्कृतिके प्रति आपका आकर्षण नाममात्र भी नहीं था। अतएव किसी भी सामाजिक उत्सवमें सम्मिलित न होना एक साधारण बात थी। युवक गोपालदास अपनी ही समस्याओंके समाधानमें व्यस्त थे। भवितव्यताकी बात कि एक दिन उनका साक्षात्कार अजमेरके जैन विद्वान् पण्डित मोहनलालजीसे हुआ। पण्डितजीसे साहित्य, धर्म और दर्शनकी चर्चा सुन, गोरा रंग और साधनाकी लिपिको व्यंजित करनेवाली चेहरेकी दीप्ति तथा 'रेटिना'में असाधारण पैनी परख अर्जित करनेवाली आँखें चमक उठीं। उनके कंचन जैसे व्यक्तित्वको कुन्दन बननेका अवसर प्राप्त हुआ।

पं० मोहनलालजीके व्यक्तित्वने गोपालदासको मोहित कर लिया। उनकी प्रतिभाको विकासका पूरा अवसर प्राप्त हुआ। 'पारस परसि कुधातु मुहाई' की किंवदन्ती चरितार्थ होने लगी। इनके जीवनमें एक नया मोड़ उत्पन्न हुआ। संस्कृत-साहित्य, जैनदर्शन और जैनवाङ्मयका अध्ययन प्रारम्भ हो गया। सतत अभ्यास और अप्रतिम प्रतिभाके समक्ष सरस्वतीको गोपालदासकी वशवर्तिता स्वीकार करनी पड़ी। ज्ञानाराधनामें बाधा पड़ती देख आपने रेलवेकी नौकरीको तिलाञ्जलि देकर रायबहादुर सेठ मूलचन्द्र नेमिचन्द्रके यहाँ कार्य आरम्भ किया। इनकी ईमानदारी, परिश्रम और सत्य-निष्ठासे सेठजी बहुत प्रभावित थे। अजमेरमें ये छः-सात वर्षतक रहे और यहीं संस्कृत व्याकरण एवं जैनन्यायका ज्ञान प्राप्त कर लिया।

पं० मोहनलालजीके साथ पं० बलदेवदासजी आगरा भी आपके विद्या गुरु थे। कहा जाता है कि पं० बलदेव-दासने महाभाष्यपर्यन्त व्याकरणका अध्ययन किया था। राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ इन्हें कण्ठस्थ थे। पञ्चाध्यायीका अध्ययन भी गोपालदासजीने पं० बलदेवदासजीसे ही किया था। श्रीचेतनस्वरूपजी एम० ए०, एल० टी० ने अपने दादा बलदेवदासजीके सम्बन्धमें अनेक तथ्योंकी जानकारीसे अवगत कराया।

## कर्मक्षेत्र बन गयी बम्बई

कुछ वर्षोंके उपरान्त आप बम्बई चले आये और यहाँ एस० जे० टेलर्स नामकी यूरोपियन कम्पनीमें कार्य करना आरम्भ किया। आपकी प्रखर प्रतिभा, कर्त्तव्य परायणता एवं ईमानदारीसे कम्पनीके अधिकारी बहुत ही प्रसन्न थे, फलतः कुछ ही दिनोंमें वेतनवृद्धिके साथ पदवृद्धि भी कर दी गयी। एक दिन आपको अपनी स्नेहमयी माताके स्वर्गवासका दुःखद समाचार मिला। आप मातृभक्तिमें विह्वल हो गये और कम्पनीसे अवकाश लेना भी भूल गये। आगरा चले आने पर आपको कम्पनीका तार मिला कि अवकाशके बिना चले जानेके अपराधमें आपको कम्पनीकी सेवासे मुक्त किया जाता है। मातृशोकके कम होने पर आप पुनः बम्बई गये और कई प्रकारके व्यवसायों द्वारा आजीविका उपार्जन करते रहे।

बम्बईमें निवास करते हुए आपके सार्वजनिक जीवनका प्रारम्भ हुआ। भा० दि० जैन महासभाकी स्थापना और उसकी प्रगतिमें आपका प्रमुख हाथ था। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि प्राचीन भारतीय भाषाओंके विशाल वाङ्मयकी उपेक्षा आपको खटक रही थी। इस प्राचीन ज्ञाननिधिका उद्घाटनकर आप समाजको आलोकित करना चाहते थे। फलतः भारतीय दिगम्बर जैन महासभाकी ओरसे संस्कृत महाविद्यालयकी स्थापनामें आपकी प्रेरणा उल्लेख्य है।

जैन वाङ्मयके अध्ययनको सार्वजनीन बनानेके हेतु अपने भा० दि० जैन परीक्षालयकी स्थापना की और उसका संचालन बड़ी योग्यतासे किया। जैन वाङ्मयके अध्ययनका प्रचार और प्रसार बढ़ा। उपेक्षित साहित्य जनताके समक्ष आने लगा और जनसाधारण उसके यथार्थ महत्त्वसे परिचित होने लगा। पण्डित गोपालदासने स्वार्थ त्यागकर शिक्षा, साहित्य और सांस्कृतिक कार्योंमें अपना अमूल्य समय लगाना आरम्भ किया। कम्पनीने आपको पुनः अपने यहाँ नियुक्त किया, पर अब साहित्य, शिक्षा और संस्कृतिके अभ्युदय हेतु कृतसंकल्प गोपालदासको वह नौकरी रुची नहीं और कुछ ही समयके उपरान्त उसे सदाके लिए छोड़ दिया। सार्वजनिक उन्नतिको महत्त्व देनेके कारण आपके अजीविका सम्बन्धी प्रयत्न व्यर्थ होने लगे। कर्त्तव्यपालन करनेकी दृढ़ता और अथक परिश्रम आपके जीवनके प्रधान गुण थे फलतः दिन-रात जैन वाङ्मयके रत्नोंके प्रकाशको जनताके समक्ष उपस्थित करने में लग गये।

## अलख जगा फिर ज्ञान ज्योतिका

स्वाध्यायी साधकको वाग्देवीकी जितनी कृपा प्राप्त होती है, उतनी संभवतः विद्यालयों एवं महाविद्यालयोंको कक्षाओंमें सम्मिलित होकर सीमित समय तक पुस्तकोंके भारसे लदे रहनेवाले महानुभावोंको नहीं। गोपालदासजीने सतत् स्वाध्यायसे दुरूह और विशाल ग्रन्थोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आप सरस्वती मन्दिरके वह प्रदीप थे, जो केवल शुद्ध गो-घृतसे ही जलता है। इस दीपका प्रकाश अब अन्य व्यक्तियोंको भी प्राप्त होने लगा था। समाजकी प्रत्येक सभामें आप सम्मिलित होते और अपने प्रवचनोंसे जनताको मन्त्र-मुग्ध कर देते। आप जैन वाङ्मयके मात्र शिल्पी ही नहीं थे, बल्कि महर्षि दधीचिकी तरह आपने अपनी हड्डियोंको गला-गलाकर जैनधर्म और जैन साहित्यका प्रसार किया। आपका त्याग और संयम भी कम उल्लेखनीय नहीं है।

बम्बई छोड़कर आपने मध्यप्रदेशके भिण्ड नामक स्थानमें आकर ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित की। स्वतन्त्र व्यवसायके साथ आपने एक पाठशाला भी संचालित की, जिसमें स्थानीय बालक जैनधर्मकी शिक्षा प्राप्त करते थे। भिण्डका स्थान जलवायुकी दृष्टिसे उत्तम था, पर साहित्य और शिक्षाके विकासके लिए जिस वातावरणकी आवश्यकता होती है, उसका वहाँ अभाव था। फलतः पण्डित गोपालदासजीका आचार्यत्व विकसित न हो पाया और अन्तरात्मामें मुक्त हस्तसे ज्ञान वितरण करनेकी भावना द्वन्द उत्पन्न करने लगी।

## हिमगिरि-सा आचार्यत्व

दस-बारह वर्षोंकी साधना द्वारा गोम्मटसार, त्रिलोकसार जैसे करणानुयोगके महनीय ग्रन्थोंका मननचिन्तन कर आपने शिक्षाकी दिशा में प्रगति की। ज्ञानसौरभ जनमानसको उल्लसित करने लगा था। भीतरका आचार्यत्व विकसित होनेके लिए जोर मार रहा था। अतएव आप व्यापारके सिलसिलेमें मध्यप्रदेशके मोरेना नामक स्थानमें आये। चम्बल घाटीके इस स्थानने गुरुजीके मनको अत्यन्त आकृष्ट किया। आपने अपना व्यवसाय करते हुए यहाँ पर एक संस्कृत महाविद्यालयकी स्थापना की और स्वयं ही निःशुल्क रूपसे छात्रोंको जैन वाङ्मय और दर्शनके प्रमुख ग्रन्थोंका अध्यापन आरम्भ किया। प्राचीन ऋषि-महर्षियोंके समान आप छात्रोंकी सब प्रकारसे सहायता करते, उन्हें ज्ञानदान देते एवं अस्वस्थ होने पर उनकी सेवा भी करते थे। आपकी जिह्वा पर सरस्वतीका वास था, अतः मन्त्रमुग्ध होकर शिष्य गुरुवर्यका प्रवचन सुनते रहते थे। आपका यश अहर्निश वृद्धिगत होता जा रहा था। कालिन्दीने जिस नैनिहालको अपनी गोदमें दुलराया था, उसीके जीवनका समस्त सौरभ चम्बलने शीतल कर दसों दिशाओंमें विकीर्ण कर दिया। अब वह कालिन्दीके तट पर विहार करने वाला गोपाल न रहकर गुरु गोपालदासके नामसे विख्यात हो गया। गुरुवर्यके ज्ञानका पराग प्राप्त करनेके लिए दूर-दूर वर्त्ती छात्र एकत्र होने लगे। चारों ओर उनके ज्ञान और पाण्डित्य की दुन्दुभि बज उठी। ज्ञान सुरभि व्याप्त होने लगी। आपमें ज्ञान की अपेक्षा मेधाका बाहुल्य था। इसका उचित संवर्धन आपने अपने स्वाध्याय द्वारा किया था। शिष्यवत्सल आचार्य गोपालदासकी पाठनशैली छात्रोंके लिए आकर्षण की वस्तु थी। उनके चरणोंमें बैठकर ज्ञान प्राप्त करनेका सौभाग्य जिन्हें मिला है, वे धन्य हैं। आपके आचार्यत्वकी छाप शिष्योंके साथ स्वाध्याय प्रेमी बड़े-बूढ़ों पर भी अंकित थी। शंका- समाधानके लिए जिस प्रत्युत्पन्नमतित्वकी आवश्यकता होती है, वह आपके पास सुरक्षित थी। आपका यह आचार्यत्व अन्य समकालीन विद्वानोंके लिए ईर्ष्याकी वस्तु था।

## धन्य-धन्य हो गया मोरेना

जिस प्रकार कमलकी गन्ध पत्तोंके मध्यसे भी कमलकी उपस्थितिकी सूचना दे देती है, उसी प्रकार मनुष्यके गुण भी मनुष्यकी जनताके मध्य उपस्थित कर देते हैं। मोरेनाकी धरतीने भी गोपालदासको पहचाना और

उनके व्यक्तित्वका उपयोग करना आरम्भ किया। तत्कालीन सिन्धिया सरकार भी उनके यशसे मुग्ध हो गयी और गुरुजीको मोरेना जिलेका ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियत किया । ये यहाँ चेम्बर आफ कामर्स एवं पंचायत बोर्डके भी सदस्य थे । मोरेना एवं उसके आसपासकी कोई भी पंचायत गुरुजीकी उपस्थितिके अभावमें असफल समझी जाती थी । वाचा शक्ति अपूर्व थी । जिस सभामें गुरुवर्य उपस्थित रहते थे, उसमें उनका भाषण सुननेके लिए कई कोस दूरसे जनता उमड़ पड़ती थी । उनका भाषण तात्विक होता था, पर वाणीमें अमृत और मिश्रीका घोल एक साथ था, अतः कठिन और दुरूह विषय भी बिना किसी कष्टके कण्ठमें समाविष्ट हो जाते थे ।

मोरेना विद्यालयको ये बिना किसी मोह-ममताके चलाते थे । अध्यापनके अतिरिक्त विद्यालयकी अन्य व्यवस्थाएँ भी इन्हींके द्वारा संचालित होती थीं । इन्होंने कई प्रकारके व्यवसाय भी मोरेनामें चालू किये, पर सफलता नहीं मिली । सरस्वती और लक्ष्मीका ईर्ष्याभाव गुरुदेवके व्यक्तित्वसे स्पष्ट परिलक्षित होता था । गुरुजीके निवासके कारण मोरेना तीर्थभूमि बन गया था । मोरेनाकी मोहर लगे बिना विद्वत्ता ही नहीं मानी जाती थी । उस समय मोरेनाके नामके साथ ही धर्मशास्त्र विषयक ज्ञानका साहचर्य माना जाता था ।

## सम्मानित फिर हुए बंग से

गुरु गोपालदासके यशकी गन्ध कस्तूरीकी गन्धके समान व्याप्त होने लगी । ४ जून सन् १९११ में कलकत्ता नगरमें एक सार्वजनिक सभाका आयोजन किया गया था । उस सभाके अध्यक्ष थे महामहोपाध्याय डॉ० सतीशचन्द्र विद्या-भूषण । इस सभामें गुरुजीका जैन सिद्धान्त पर महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ । इस भाषणकी प्रशंसामें जस्टिस सर गुरुदास बनर्जीने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा—'मैंने आज जो परमतत्त्व पण्डितजीके मुखसे सुने हैं, वे अत्यन्त गम्भीर और महत्त्व-पूर्ण हैं । ऐसे पण्डित और सुवक्ताको धन्यवाद देना मेरा परम कर्त्तव्य है ।' जस्टिस सर गुरुदास बनर्जीके पश्चात् महामहो-पाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषणने कहा—'हम स्याद्वाद वारिधि, वादिगजकेसरी पं० गोपालदासजी बरैयाकी वक्तृता सुनकर बहुत प्रसन्न हुए हैं । मैं समस्त बंग देशकी ओरसे पण्डितजीका अभिनन्दन करता हुआ उन्हें धन्यवाद देता हूँ । मैं बार-बार कहूँगा कि पण्डितजीने जैन दर्शनके कठिन तत्त्वोंको बहुत ही सरलतासे समझा है । पण्डितजीका तत्त्वज्ञान प्रगाढ़ है । आपकी अन्य धर्म-दर्शनोंकी समीक्षात्मक शैली बहुत सुन्दर और तर्कयुक्त है । सभापति विद्या भूषणने कहा—'मैं बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार करता हूँ कि आज तक मुझे आप जैसा जैनदर्शनका जानकार एक भी विद्वान् नहीं मिला । पण्डितजीकी तत्त्व, द्रव्य, स्याद्वादनय, कर्मसिद्धान्तकी धारा प्रवाह वक्तृत्व शैली अद्वितीय है । मेरा अनुरोध है कि पण्डितजीके भाषणोंकी पुनः योजनाकी जाय । इस प्रकारके यशस्वी विद्वान् ही वस्तुतत्त्वकी यथार्थ जानकारी दे सकते हैं ।'

कलकत्ताके समस्त संस्कृतज्ञ विद्वानोंने एकत्र होकर गुरुजीको 'न्यायवाचस्पति' की उपाधि प्रदान की, साथ ही आपका प्रशंसनीय अभिनन्दन भी किया ।

'न्यायवाचस्पति' उपाधिके पूर्व गुरुजीको जैन समाजकी प्रमुख सभाओंकी ओरसे स्याद्वादवारिधि और वादिगज-केसरी उपाधियाँ भी प्राप्त हो चुकी थीं । गुरुजीकी व्याख्यान शैली और तर्कशैली इतनी मनोरम थी, जिससे उनके समक्ष वाद-विवादमें ज्ञानके हिमालय पर आसीन रहनेवाले विद्वान् भी नहीं ठहर सकते थे । स्याद्वादनय, कर्मसिद्धान्त एवं आत्माके कर्त्तृत्व-भोक्तृत्ववादका समर्थन न्यायशैली द्वारा करते थे । पक्ष समर्थनमें दी गयी युक्तियोंका खण्डन करनेमें बड़े-बड़े नैयायिक भी असमर्थ थे । उत्तर भारतकी समस्त जैन सभाओंका नेतृत्व उनके ही हाथमें था । जैनदर्शन और जैन सिद्धान्त-के सम्बन्धमें किसी भी प्रकारकी उठायी गयीं शंकाओंका समाधान गुरु गोपालदास ही करते थे । उन जैसे विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति विश्वमें अति स्वल्प ही होते हैं ।

## जो दिग्गज शास्त्रार्थ विजेता

प्रतिभा धनी गुरु गोपालदास शास्त्रार्थ करनेमें भी किसीसे कम नहीं थे । गुरुजीके अविर्भावके पूर्वसे ही आर्य समाज धर्म प्रचारका कार्य कर रहा था । ईसाइयों द्वारा प्रत्येक नगरमें मिशन शिक्षा-केन्द्रोंका जालसा बिछाया जा रहा था । आर्य समाज शास्त्रार्थोंकी योजना कर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेमें सर्वाधिक गतिशील था । गुरुजीका कई बार आर्य-समाजके साथ शास्त्रार्थ हुआ । आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा अजमेरमें दर्शनानन्द सरस्वतीको शास्त्रार्थमें पराजित किया । आपके इस शास्त्रार्थकी प्रशंसा सरस्वतीके तत्कालीन सम्पादक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदीने भी की थी ।

## पत्रकारितामें रुचि जागी

पत्रकार लोक चक्षु और लोक जिह्वा है। वह समाज और देशके लिए देखता और बोलता है, वह जो स्वाध्याय करता है, वह भी परहितके लिए। वह मुखके समान है, जिस पर समाज रूपी अंगोंका पालन-पोषण और संगठनका दायित्व रहता है। वह भूतकालका विश्लेषक, वर्तमानका संस्थापक और भविष्यका अग्रदूत है। उसके विशाल हृदयमें शान्तिका सरोवर, जिह्वामें अग्नि स्फुलिङ्ग और लेखनीमें कठोर तीक्ष्णता होती है। गुरुगोपालदास इन्हीं गुणोंसे अलंकृत एक यशस्वी पत्रकार थे। उनके युगतक भारतकी पत्रकारिता शैशवावस्थामें थी। गुरुजीने दि० जैन बम्बई प्रान्तिक सभाके मुखपत्र 'जैनमित्र'का सम्पादन आरम्भ किया। लगभग दस वर्षों तक आप इस पत्रके सम्पादक रहे। पत्रमें विषयोंका चयन, रचनाओंका संकलन, उनका क्रम, सजधज आदि सभी चीजोंसे गुरुजीके संपादनकी रुचि और आदर्शप्रियताका पता चलता है। इन्होंने जो संपादकीय लेख लिखे हैं, उनसे उनके व्यक्तित्व पर पूरा प्रकाश पड़ता है। शिक्षा, शिष्टाचार, उन्नति, सभा, संस्था, संस्कार, समस्याएँ आदि विषयों पर विस्ताररूपसे गुरुजीने लिखा है। उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं। धर्म, दर्शन, समाजविज्ञान एवं राजनीति विषयों पर आपने प्रकाश डाला है। गुरुजी धार्मिक विद्याको उतना ही आवश्यक समझते थे, जितना आवश्यक शरीरके लिए भोजन होता है। जैनमित्रमें जैन जगतके ताजे और तात्कालिक समाचार भी प्रकाशित होते थे। जैन बन्धुओंसे अपील करने तथा जातीय स्वार्थके सम्बन्ध सुझाव उपस्थित करने के लिए यह पत्र एक सुगम साधन था।

## चमक उठी साहित्य सर्जना

गुरु गोपालदासका साहित्यिक जीवन जैनमित्रके सम्पादनसे आरम्भ हुआ। दर्शन जैसे गूढ़ विषयका निरूपण करनेके साथ उपन्यास जैसी सरस साहित्य विधाका प्रणयन करना आपकी अपनी विशेषता है। सुशीला उपन्यासमें गुरुजीने धार्मिक सिद्धान्तोंकी व्यंजनाके लिए काल्पनिक चित्रोंको इतनी मधुरता और मनोमुग्धतासे खींचा है, जिससे पाठक गुणस्थान जैसे कठिन विषयोंको कथामाध्यम द्वारा सहजमें अवगत कर लेता है। इस उपन्यासका कथानक अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। घटनाएँ शृंखला बद्ध हैं। घटनाओंका आरम्भ और अन्त ऐसे कलापूर्ण ढंगसे होता है, जिससे पाठककी उत्सुकता बढ़ती जाती है। इसकी शैली प्रौढ़ और प्रवाह पूर्ण है। काव्यका चमत्कार सर्वत्र विद्यमान है। भावनाओंके साथ घटनाओंका साकार रूप प्रदर्शित किया गया है, प्राकृतिक चित्र भी मनोहर और सरस हैं। अलंकारोंका आकर्षक प्रयोग, चित्रमय वर्णन, अभिनयात्मक कथोपकथन, उदात्तचरित्र एवं रचना कौशल प्रत्येक आलोचकको भावविभोर बना देते हैं।

'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' एक उपयोगी कृति है। इसे गुरुजीने अपने शिष्य मोतीलालके अध्यापनार्थ लिखा था। पाँच अध्यायोंमें ग्रन्थ समाप्त होता है। इसे जैन सिद्धान्तका कोषग्रन्थ कहा जा सकता है। प्रमाण, नय, द्रव्य, गुण, पर्याय, कर्मबन्ध, गुणस्थान एवं मार्गणा आदि का स्वरूप, भेद-प्रभेद इस ग्रन्थमें वर्णित हैं। इसमें ६६८ प्रश्नोंका उत्तर दिया है। प्रश्नोत्तर शैलीमें यह रचना लिखी गयी है।

गुरुजीकी तीसरी कृति 'जैनसिद्धान्त' दर्पण है। इस ग्रन्थमें जैनागमके समस्त ज्ञातव्य तथ्य संकलित हैं। हिन्दी भाषाका ज्ञाता प्रत्येक व्यक्ति आपकी इस रचनासे जैन सिद्धान्तोंकी जानकारी प्राप्त कर सकता है। जैन जागरफी, प्रभृति अनेक निबन्ध भी आपके द्वारा लिखित उपलब्ध हैं।

## सदाचार-नैष्ठिकता

गुरुजी चरित्रकी मूर्ति थे। आपका उज्ज्वल चरित्र अन्य लोगोंके लिए भी अनुकरणीय है। आपके जीवनमें स्पष्ट है कि संसारमें व्यापार भी सत्य, अहिंसा और अचौर्यव्रतको दृढ़ रखकर किया जा सकता है। कड़ीसे कड़ी परीक्षाका अवसर आने पर भी आपने अणुव्रतोंका रंचमात्र भी त्याग नहीं किया।

गुरुजीका अखण्ड ब्रह्मचर्य और हाथके सच्चे थे। निकट परिवारके व्यक्ति आपको देवता समझते थे। आपके जीवनका आदर्श सहस्त्रोंको अनुप्राणित करता था। आपमें रत्नत्रयका अपूर्व समन्वय था। आपके विचारमें आचार और आचारमें विचार था। मनोविजेता होनेके कारण ही आप जगत् विजेता थे। आपने सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय अपना जीवन समर्पित कर दिया था। गृहस्थ होने पर भी आपका जीवन मुनितुल्य प्रतीत होता था। असत्य भाषण आपने

कभी नहीं किया था। पञ्चागुणुव्रत जीवनके संवल थे, अतः सादा रहन-सहन और शुद्ध भोजन आप सर्वदा ग्रहण करते थे।

## शुभ-संघर्ष-सफलता

जीवनका विकास संघर्षोंके बीचसे होता है। आपके विचार क्रान्तिकारी और विवेकपूर्ण थे। बिना किसी प्रलोभनमें पड़े आप निष्पक्ष निर्णय देते थे। लल्लो-चप्पो करना या खुशामदी बातें कहना आपको नहीं आता था। बड़े-बड़े लखपतियों और करोड़पतियोंको उनके मुँह पर खरी-खरी सुना दिया करते थे। धर्मकी बातोंको यथार्थ रूपमें उपस्थित करते थे। दस्सा पूजाधिकार मुकदमेमें दी गयी गवाहीके कारण कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियोंने आपके विरोधमें जातिच्युत एवं सभा बहिष्कारके प्रस्ताव स्वीकृत कराये। परन्तु इन विरोधोंसे गुरुजीका यश मलिन नहीं हुआ, प्रत्युत उज्वल ही होता गया।

सन् १९१२ ई० में 'दक्षिण महाराष्ट्र सभा' का विशिष्ट अधिवेशन वेलगावमें हुआ था। गुरु गोपालदास इस अधिवेशनके अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। पूनासे वेलगाँव तक प्रत्येक स्टेशन पर गुरुजीके स्वागतकी भव्य योजनाकी गयी थी। वेलगाँवमें स्टेशनसे पंडाल तक सहस्त्र नर-नारियोंने अभूतपूर्व स्वागतकी तैयारियाँ की थीं।

## वीणाको अन्तिम झंकार

गुरु गोपालदासने विच्छिन्न होती हुई विद्वानोंकी परम्पराको सुदृढ़ बनाया। सतत् अध्यवसायके कारण कार्याधिक्यने आपके स्वास्थ्य-संस्थानको विघटित कर दिया। आर्थिक और घरेलू परिस्थितियाँ भी आपको झकझोर रही थीं। सन् १९१७ ई० में आप अत्यन्त बीमार पड़े, रातभर आपको नींद नहीं आती और बेचैनी बढ़ती जाती थी। अब ऐसा आभासित होने लगा था कि यह दीप बुझने वाला है। एक दिन रात्रिमें वीणाकी वह झंकार जिसने समग्र भारतमें एक नये संगीतका सृजन किया था, शान्त हो गयी।

भारतीय किसान जैसा दुबला-पतला शरीर, गौर वर्ण, लम्बा कद, गोलाकार मुखमण्डल, कटी-छंटी घनी मूँछें, आँखों पर चश्मा, सिर पर पगड़ी, तन पर मिरजई, नीचे घुटनों तक धोती और पैरमें चमरूहा जूता, मस्तकका विशाल चन्दन-तिलक और गलेका दुपट्टा सभीको अपनी ओर आकृष्ट करते थे। वे पुण्योंके दुर्ग थे। उन्हें पण्डितका आत्मगौरव और स्वाधीनचेता कलाकारके मनकी मस्ती प्राप्त थी। प्रतिभा और विद्वत्ताका ऐसा मणिकाञ्चन संयोग बहुत कम स्थलों पर दिखलायी पड़ता है। उनके द्वारा प्रवर्तित सारस्वतोंकी परम्परा युग-युगों तक उन्हें अमर बनाये रखेगी। वे साक्षात् या परम्परया वर्तमान समस्त जैन विद्वद्वर्गके गुरु हैं, उनका व्यक्तित्व महनीय गुणोंके संघातसे निर्मित है, जिससे वे अनन्तकाल तक अधूमिल और प्रकाशमान रहेंगे।

**आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।**
**एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जजीर॥**

यद्यपि उनका पार्थिवशरीर आज नहीं है, पर यशःशरीर इस भूतल पर अनन्तकाल तक विद्यमान रहेगा।
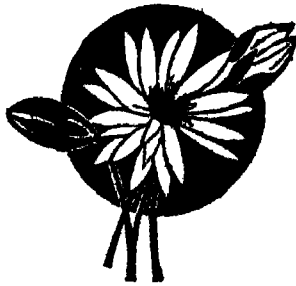
# गुरु गोपालदासके जीवनके कुछ पहलू

श्री पंडित बाबूलालजी, पनागर

●

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाकी स्थापनाके थोड़े ही वर्षके पश्चात् पूज्य श्री गुरु गोपालदासजीने जैन समाजकी सेवामें भाग लिया। आप पहिले ही स्कूलमें हिन्दी और अंग्रेजी भाषाकी मैट्रिक कक्षा तकका ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, समाज-सेवामें प्रवेश करनेके पूर्व आप जैनधर्म-विषयक ज्ञान और संस्कृत भाषासे पूर्ण अनभिज्ञ थे। उस समय आर्य-समाजकी जोरोंसे प्रगति हो रही थी, अतएव आप भी उसके प्रवाहमें बह रहे थे। दैवयोगसे आपको अजमेरमें स्व० पण्डित मोहनलालजीका और आगरामें स्व० पंडित बल्देवदासजीका समागम प्राप्त हो गया; जिसके कारण आपकी तीक्ष्ण बुद्धि और प्रखर प्रतिभाने जैनधर्मके मार्मिक तत्त्वज्ञानकी ओर प्रगति की। अपने सत्प्रयत्नसे आप अति अल्प समयमें जैनधर्मके करणानुयोग और द्रव्यानुयोग विषयक तत्त्वोंके अच्छे वेत्ता बन गये। बम्बई पहुँचनेपर आपने स्व० पं० जीवारामजी शास्त्रीके समीप संस्कृत व्याकरणका अभ्यास कर लिया। स्व० पूज्य पं० धन्नालालजी काशलीवाल और स्व० गुरु पं० पन्नालालजी बाकलीवाल आपके परम हितैषी मित्र थे और जैनधर्मकी प्रभावना बढ़ाने तथा जिनवाणीके प्रकाशित करने और प्रसारित करानेमें आपके परम सहायक बन गये।

पंडितजीकी लगन और अपूर्व उत्साहका परिचय पाकर महासभाने आपको अपने जैन परीक्षालयके मंत्रित्व पदपर प्रतिष्ठित किया। महासभाकी स्थापनाके कुछ ही समय पश्चात् बम्बईके परमोपकारी, सद्दानी, विद्याप्रेमी, तीर्थभक्त-शिरोमणि स्व० सेठ माणिकचन्दजी जवेरी जे० पी० तथा शोलापुरके श्री स्व० सेठ हीराचन्दजी और उपर्युक्त त्रय पंडितोंके सत्प्रयत्नसे मुम्बई दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभाकी स्थापना हुई। सभाने अपना 'जैनमित्र' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया और गुरु गोपालदासजीको उसका सम्पादकीय भार सौंपा, जिसे पंडितजीने भलीभाँति सम्हाला और पत्रको समाज-सेवा करनेमें उत्तेजित करनेवाले, तत्त्वज्ञान करानेवाले, धर्मविपक्षी जैनेतर बन्धुओंको मुखतोड़ उत्तर देनेवाले उत्तमोत्तम लेखोंसे सुसज्जित करके मासिक और फिर पाक्षिक रूपमें परिणत कर दिया। इस पत्रके साथ 'जैन सिद्धान्त-दर्पण' सरीखे अत्यन्त गहन विषयोंका सरल सुबोध वाक्योंद्वारा ज्ञान करानेवाले तथा 'सुशीला' उपन्यास सरीखे उच्चकोटिके उपन्यासको लिखकर समाजको भेंट किया। 'जैनमित्र' के सम्पादनमें हिन्दी भाषाके आचार्य स्व० पं० नाथूरामजी प्रेमीने आपके कार्यमें सहयोग दिया।

बम्बई प्रान्तिक सभाके जैन विद्यालयके सिवाय महासभाके महाविद्यालयके प्रबन्धक रहकर इनकी काफी उन्नति करनेके पश्चात् गुरुजी मोरेना ( स्टेट ग्वालियर ) में आगये और वहाँ दूकान खोलकर व्यापारी बन गये, परन्तु समाज सेवाके भाव तथा कार्यमें कुछ भी कमी नहीं होने दी। श्रीमान् स्व० पं० लालारामजी, स्व० पं० वंशीधरजी शोलापुर, स्व० पं० खूबचन्दजी आदि विद्वानोंको जैन तत्वज्ञानमें खूब शिक्षित बना देने पर आपके मनमें यह विचार आया कि जैन सिद्धान्त विद्यालयकी स्थापनाकी जावे। उस समय मोरेनामें आपके पास केवल पंडित खूबचन्दजी शास्त्री, श्री गोम्मटसार ग्रन्थ का अध्ययन करते थे। माघ सुदी सं० १९६६ में श्रीमान् रायबहादुर सेठ पूरण शाहजी, सिवनीने श्री सम्मेदशिखरमें पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव कराया था। उस उत्सवके अवसर पर भा० दिगम्बर जैन महासभाका वार्षिक अधिवेशन श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजी इन्दौरकी अध्यक्षतामें हुआ। उस अवसर पर वहाँ पर जैन समाजके प्रमुख विद्वान्, श्रीमान्, सामाजिक कार्यकर्ता उत्साही युवकों और सर्व साधारण जैन जनताका भारी जमाव हुआ था। महासभाकी सबजेक्ट कमेटीमें सौभाग्यसे मुझे भी प्रवेश करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। सेठ साहिबके डेरे पर इस कमेटीकी बैठकमें प्रस्तुत किये इस प्रस्तावपर भारी विवाद हुआ कि बनारसमें चालू स्याद्वाद पाठशालामें महासभाके मथुरामें चल रहे महाविद्यालयको वहाँसे ले आकर सम्मिलित कर दिया जावे और पाठ्य-विषयोंमें अंग्रेजी भाषाका प्राधान्य रख करके इन

दोनोंका नाम जैन कालेज रखा जावे, ऐसा श्रीमान् डिप्टी चम्पतराय सा० महामंत्री महासभाका सुझाव था। परन्तु गुरु गोपालदासजी द्वारा सारगर्भित विरोधमें उपस्थित सदस्योंको लाभांश अधिक जँचनेके कारण वैसा न हो सका और संस्थाका 'श्री स्याद्वाद जैन महाविद्यालय' नाम रखा गया। उस समय संस्कृत भाषामें ही व्याकरण, न्याय, साहित्य, जैन धर्मशास्त्र आदि विषयोंकी शिक्षा देना निश्चित हुआ। गुरुजी जबतक जैन परीक्षालयोंके मंत्री रहे, तबतक परीक्षाके विषयोंमें किसी भी जैनेतर आचार्य या विद्वान्के रचित ग्रन्थको सम्मिलित नहीं होने दिया। कारण यह रहा कि परीक्षाके लिये आवश्यक होनेसे ही महत्वपूर्ण उच्चकोटिके जैन आचार्यों, विद्वानोंके रचित ग्रन्थोंका प्रकाशन हो सकेगा और हुआ भी ऐसा, कातन्त्र, शाकटायन, जैनेन्द्र व्याकरण, परीक्षामुख, प्रमेयरत्नमाला, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड न्याय ग्रन्थ, द्रव्य-संग्रह, योगसार, पंचास्तिकाय, आत्मख्याति, समयसार, प्रवचनसार, पंचाध्यायी, गोम्मटसार, रत्नकरंडश्रावकाचार, सागारधर्मामृत, त्रिलोकसार आदि धर्मशास्त्र, क्षत्रचूडामणि, जीवंधरचम्पू, यशस्तिलकम्पू आदि साहित्य विषयक शास्त्रोंका संशोधनपूर्वक शुद्ध प्रकाशन हुआ जिससे जैन शासन वाङ्मयके ज्ञाता उच्चकोटिके विद्वान् तैयार हुए। गजरथ महोत्सवमें आये हुए बनारसकी स्याद्वाद पाठशालाके संस्कृत प्रथमोत्तीर्ण पं० देवकीनन्दनजी, पं० बंशीधरजी, पं० मक्खनलालजी, पं० उमरावसिंहजी इन चार विद्यार्थियोंने गुरुजीकी सिद्धान्त विषयक ज्ञान-गरिमासे प्रभावित होकर सिद्धान्तके अध्ययन करनेकी अपनी अभिरुचि प्रकट की और मोरेनामें आकर उपस्थित हुए। इन छात्रोंके आनेपर गुरुजीने मोरेनामें जैन सिद्धान्त पाठशाला स्थापित की और उसमें शिक्षा देनेके लिये न्यायाचार्य पं० माणिकचन्दजीको आमंत्रित करके न्यायके शिक्षक पदपर नियुक्त किया और आप सिद्धान्त विषयकी शिक्षा देने लगे। इस प्रकार जैन सिद्धान्त पाठशालाको स्थापित करके उसे प्रगति-पथपर बढ़ाते हुए जैन सिद्धान्त महाविद्यालय बनाया और उसके द्वारा सैकड़ों विद्यार्थियोंको जैन सिद्धान्तके प्रौढ़ विद्वान् बना दिया। पाठशाला तो स्थापित कर दी, दिनोंदिन भारी संख्यामें प्रविष्ट होनेवाले छात्रोंको भरती करना व आवश्यक संस्कृत व्याकरण साहित्यके शिक्षकोंको नियत करनेका क्रम जारी रखा। परन्तु न तो एक पैसा स्थायी कोषमें था, न कहींसे स्थायी रूपसे मासिक सहायता थी और न आपकी स्वयं आर्थिक परिस्थिति व व्यापारकी स्थिति ही ऐसी थी जिससे निर्विघ्न रूपसे गृहस्थीका संचालन हो सके। ऐसी अत्यन्त कठिन परिस्थितिमें भी गुरुजीने अपनी इस संस्थाकी आश्चर्यजनक उन्नति की तथा इसकी सहायताके लिए किसीसे याचना करना अपनी प्रकृति विरुद्ध समझते रहे। गुरुजीकी यह प्रतिज्ञा थी कि धर्मोपदेशके अथवा किसी भी धर्मकार्यके लिए बुलाये जानेपर या स्वतः पहुंच जानेपर किसी प्रकारकी भेट ( विदाई ) द्रव्य, वस्त्र, आदि रूपमें नहीं लेना और वहाँ वालोंने अधिक आग्रह किया तो मात्र मोरेना तककी यात्राका मार्ग व्यय लेना। अपनी इस निस्पृह वृत्तिके कारण ही आप श्रीमान् महाराज छतरपुर द्वारा विदाईमें दिये जानेवाले मूल्यवान् भेंट व हारको न लेकर केवल पुष्पमाला द्वारा नरेशके करकमलोंसे सम्मानित हुए थे। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि विद्यालयके हजारों रुपयोंके मासिक व्ययको जुटानेके लिए गुरुजीको कितनी भारी चिन्ता रहती होगी तथा कितना अथक घोर परिश्रम करना पड़ता होगा। इतना होते हुए भी अपनी सरल रीतिसे मृदु वाणीमें दी हुई मार्मिक शिक्षासे तथा अपनी निस्पृहता और नैष्ठिक प्रतिमाके व्रत पालनके आचरणसे जीवनभर छात्रोंको सुशिक्षित व सदाचारी बनाते रहे।

## स्थितिकरण अंगका पालन

एक बार गुरुवर्य पं० गोपालदासजी कार्यवश खुरई ( सागर ) पधारे थे। वहाँ श्रीमंत सेठ मोहनलालजीके यहाँ पर बैठे हुए सेठजीसे व्यापार सम्बन्धमें बातचीत कर रहे थे, उसी समय वहाँ दो जैन महाशय आये और उन्होंने अपना परिचय देकर आनेका कारण बतलाया कि हम खतौली ( यू० पी० ) से आये हैं और अग्रवाल हैं। हमारे यहाँ माडेमलजी ( दस्सा अग्रवाल जैन ) के पूर्वजों द्वारा निर्मापित प्राचीन विशाल जैन मन्दिर है, जिसमें हम दस्सा जैन बिना किसी भेदभावके अपने यहाँके बीसा जैन बन्धुओंके समान भगवान् जिनेन्द्रको पूजन आदि करते हुए आ रहे थे, परन्तु हाल ही समाजमें हम लोगोंसे और बीसा जैन बन्धुओंसे मनमुटाव हो गया जिससे उन्होंने माडेमलके पूर्वजों द्वारा निर्मापित जैन मन्दिर पर अपना अधिकार जमा लिया है और हम सबको जैन मन्दिरोंमें जानेकी रोक लगा दी है। बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर भी जब हमारी प्रार्थना नहीं सुनी गई तब हमने कोर्टमें दर्शन-पूजन करनेके अधिकारको पानेके लिये नालिश कर दी है। परन्तु हमारी संख्या अति अल्प है और बीसा भाइयोंकी बहुत ज्यादा है, दूसरे उनमें धनिक और विद्वान् भी अधिक हैं जिससे हमें आशा नहीं है कि हमें नालिशमें सफलता मिलेगी। हमने अनेक जैन विद्वानोंके पास प्रार्थनाकी परन्तु बीसा भाइयोंके विरुद्ध प्रायः सबने हमारे पक्षके समर्थन करनेमें असमर्थता दिखाई है, अब आपके पास आये हैं। यदि आप भी हमें रूष्ट करेंगे तो अब हम लोग जिनकी संख्या पन्द्रह सौ ( १५०० ) के लगभग है, आर्य समाजमें मिल जावेंगे।

गुरुजीने उनके अंतिम वाक्यको सुना, अत्यन्त खेदित हुए और बोले, भगवान महावीरने पतितोंको पावन करनेमें ही तो अपना जीवन बिताया है और फिर तुम तो पतित नहीं हो, तुम्हारे पूर्वजोंमें भले ही कोई दोष से पतित हो गया होगा। खैर, धीरज रखो, मैं तुम्हारे पक्षका न्यायालयमें समर्थन करनेका यथासाध्य प्रयत्न करूँगा। पंडितजीसे आश्वासन मिलने पर आगन्तुक बन्धुओंको सान्त्वना मिली और वे अपने स्थानको चले गये। उनके चले जाने पर श्रीमंत सेठ साहिबने पंडितजीको समझाया कि आप इस झंझटमें न पड़िये, यह कोई सैद्धान्तिक मामला नहीं है, उनका आपसका जातीय झगड़ा है, दूसरे बीसा समाजके विरोधमें पड़ना आपके लिये बहुत ही हानिकारक है। इसमें पड़नेसे आपके बड़ेसे बड़े हितैषी बीसा, हर जातिके (अग्रवाल, खंडेलवाल, परवार, गोलापूर्व आदि जातियोंके ही नहीं, आपकी वरैया जातिके भी) जैन भाई आपके पूर्ण विरोधी हो जावेंगे। पंडितजीने सेठ साहिबकी बातें सुनी और बोले कि इन १५०० भाइयोंको आर्य-समाजमें मिलते हुए देखनेको गोपालदास जीवित न रह सकेगा। पंडितजी वहाँसे चले आये और दस्सोंके पक्ष में कोर्टमें गवाही देनेको हाजिर हुए। आपने गवाहीमें कहा—वर्त्तमान २१००० वर्षके इस पंचमकालके अन्तमें जैनधर्मके पालक एक मुनि, एक अर्जिका तथा एक श्रावक और श्राविका मात्र ये चार व्यक्ति रहेंगे, सो भी राजाके अन्यायसे मरणको प्राप्त होवेंगे। पश्चात् इस आर्यखंडमें धर्म कर्मका पालक कोई मनुष्य नहीं रहेगा, सब ही नर-नारी पशुओंके समान माता पुत्र, पिता पुत्री आदिका विचार किये बिना ही काम सेवन (व्यभिचार) करेंगे। हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापोंमें रत होवेंगे और छठमें कालके पूरे २१००० वर्षों तक इसी प्रकार घोर अनाचाररूप प्रवृत्ति रखेंगे। इसके पश्चात् उत्सर्पिणी कालके प्रथम कालमें पूरे २१००० वर्षोंमें और द्वितीय कालके २०००० वर्षों तक घोर अनाचारकी प्रवृत्ति रहेगी। २१००० + २१००० + २०००० कुल ६२००० वर्षोंमें सन्तान परम्परासे व्यभिचार जनित संतान होती रहेगी। फिर किसी एक कुटुम्बमें पहिले कुलकरका जन्म होवेगा, जो लोगोंको सदाचारकी आंशिक रूपमें शिक्षा देगा। तत्पश्चात् १००० वर्षोंमें तेरह कुलकर और होवेंगे और सदाचार तथा कुलाचारकी शिक्षा देकर लोगोंको सदाचारी बनाते रहेंगे और उनकी धर्मके प्रति रूचि करावेंगे। चौदहवें कुलकरके घरमें प्रथम तीर्थंकर श्रीपद्मरायका जन्म होवेगा, जो विश्ववंद्य होकर, श्रावक और मुनि धर्मको पालनेवाले और उपदेश देनेवाले होवेंगे तथा तपश्चरण करके मोक्ष पद प्राप्त करेंगे। इस प्रकार तीन कालके ६२००० वर्षोंमे प्रचलित घोर अनाचार व्यभिचारसे दूषित मानव, श्रीकुलकर महाराजोंके साधारण उपदेशोंसे केवल १००० वर्षमे ही इतने पवित्र बन जायेंगे कि उनके घरमे परम पूज्य तीर्थंकर भगवान जन्म धारण करेंगे। तब फिर यह कैसे माना जा सकता है कि कदाचिद् कभी एक व्यक्तिके व्यभिचारित हो जानेसे उसकी संतान, प्रति संतान तथा उनका साथ देने वाले अन्य गृहस्थ सदैवके लिए दूषित मान लिये जावें और श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा व दर्शन करनेके अधिकारोंसे वंचित किये जावें? हाँ, यह बात अवश्य है कि व्यभिचारकी प्रवृत्तिको रोकनेके लिये व्यभिचारी व्यक्तिके लिये जातीय बंधनके रूपमें कुछ समयको रूकावट लगा दी जाय, सो भी कितने समयके लिये।

अपनी गवाहीकी सबूतीमें पंडितजीने श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य रचित 'श्रीत्रिलोकसार' की गाथा और पंडित प्रवर मेधावी द्वारा संगृहीत 'धर्मसंग्रह श्रावकाचार'के श्लोक प्रमाण स्वरूप पेश किये। यद्यपि पंडितजीने अपनी गवाही शास्त्रानुकूल ही दी थी, परन्तु उससे बीसा समाजमें हलचल मच गई। बड़ी बड़ी सभाएँ बुलाई गईं और उनमें प्रस्ताव पास किये जाने लगे कि गोपालदास वरैया उत्सूत्री हैं। इसने परम पूज्य तीर्थंकरोंको जार संतान निरूपित करके जैनधर्मके विरुद्ध कार्य किया है, इससे जाति बहिष्कृत किया जाता है तथा जिन दर्शन व सभामें प्रवचन करनेसे रोका जाता है आदि। उत्तर प्रदेश, मारवाड़, गुजरात, बुन्देलखंड आदि प्रान्तोंमें भारी हो हल्ला मचा, पंडितजीके विरोधमें खूब आन्दोलन चालू हुआ। उसी समय जैन दक्षिण प्रांतिक सभाका वार्षिक अधिवेशन बेलगांवमें होना निश्चित हुआ और उसकी अध्यक्षताके लिये गुरु गोपालदास चुने गये। इस प्रांतिक सभाके स्थायी सभापति सेठ माणिकचन्दजी जवेरी, बम्बई वाले थे। इन पर उत्तरवासी जैन बीसा सेठोंने भारी दबाव डाला कि पं० गोपालदासजी सभापति न बनाये जावें। परन्तु दक्षिण वालोंने, जिनमें प्रमुख श्री चौगुले वकील थे, सेठोंकी बातको यह कहकर न मानी कि 'हमने खतौलीके मुकद्दमेमें पंडितजीके बयानोंको अक्षरशः सत्य और आगमानुकूल पाया है। इस अधिवेशनमें मैं भी सम्मिलित हुआ था, वहाँ पर विद्वान्, श्रीमान् एवं कर्मठ कार्यकर्ताओंका अच्छा जमाव हुआ था। अधिवेशनमें गुरुजीने विचार-विमर्शोंके संघर्षको अपनी दूरदर्शी विद्वत्ता, कार्य-कुशलता एवं वाक्पटुतासे शांत करके सभा द्वारा सम्यक् सम्मान प्राप्त किया था।

## अनोखी सूझ

इटावामें संस्थापित 'जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा' के वार्षिक अधिवेशनमें आनेवाले जैनेतर विद्वानों द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर देने, शंकाओंका समाधान करनेमें पंडितजी सदैव अग्रसर रहते थे। एक दिन एक आर्यसमाजी विद्वान्ने पूछा

कि इंग्लैण्ड सरीखे ठण्डे मुल्कमें वहाँका निवासी अव्रत सम्यग्दृष्टि व्यक्ति, क्या मांस खा सकता है ? पंडितजी बोले, उस व्यक्तिकी अप्रत्याख्यावरण कषायोंका क्षयोपशम न होनेसे वह मांसका प्रतिज्ञापूर्वक त्याग नहीं कर सकेगा, परन्तु सम्यग्दर्शन भाव होनेसे उसके खानेको हेय मानकर उदास रहेगा। इसी प्रकारकी अनेक विचित्र शंकाओंका समाधान पंडितजी बड़ी सरलतासे करते थे। उनके भाषणोंमें की जानेवाली तत्त्वचर्चासे प्रभावित होकर वीधूपुरा निवासी कुंवर दिग्विजयसिंहजी (क्षत्रिय) ने आर्यसमाजसे विलग होकर जैनत्व स्वीकार किया था। जैन समाजके निर्भीक, कर्मठ कार्यकर्त्ता, पंडित अर्जुनलालजी सेठी बी० ए० द्वारा श्रीगोम्मटसारादि ग्रन्थोंके विषयोंमें की गई गूढ़-से-गूढ़ शंकाओंका समाधान शीघ्र ही कर देनेकी क्षमताको देखकर उपस्थित विद्वन्मंडली अवाक् रह जाती थी। उस समय षोडशकारण भावनाओंमें प्रथम भावना, दर्शन विशुद्धिका समास विश्लेषण जैन पंडित 'दर्शने विशुद्धि इति दर्शन विशुद्धि' ऐसा करते थे। सेठीजीने पूछा, जीवके सम्यक्दर्शन भाव जो कि शुद्ध हैं, उनमें और विशुद्धि कैसी ? यह सुनकर पंडितजीने झट उत्तर दिया 'सेठीजी ! सम्यग्दर्शनेन सह विशुद्धिः इति दर्शन विशुद्धिः' अर्थात् शुद्ध भाव, सम्यग्दर्शनके साथ विश्वकल्याण करनेकी तीव्र भावना, जो कि चारित्रमोहनीय कर्मके कारण शुभराग रूप होती है वही विशुद्धि है, न कि सम्यग्दर्शनमें विशुद्धि। सेठीजीका समाधान हो गया।

अजमेरमें स्वामी दयानन्दजीके पट्ट शिष्य स्वामी दर्शनानन्दजीके साथ जैनोंके हुए शास्त्रार्थमें अपनी रुग्ण अवस्थाके कारण भारी निर्बलताके होते हुए भी पंडितजीने उस शास्त्रार्थमें विजय पाई थी। इतना ही नहीं उस समय स्वामीजीने हर्षित होकर कहा था कि मुझे स्वप्नमें भी भरोसा नहीं था कि सरस्वतीजीके मुझ शिष्यको जिसने जन्मभर 'ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता है' इसका समर्थन किया है, मेरी इस धारणाको कोई भी वाद-विवाद करके ठेस पहुँचा सकेगा, परन्तु आज अपनेको पंडितजी द्वारा अत्यन्त क्षीणकाय निर्बल और निरुत्तर हुआ पा रहा हूँ और पंडितजीकी प्रशंसनीय तर्कशैलीपर मुग्ध होकर हर्षित हो रहा हूँ।

सन् १९११ के दिसम्बर मासमें स्याद्वाद महाविद्यालय काशीका वार्षिक अधिवेशन हुआ था, जिसमें जर्मनीके फिलासफर श्री डा० हर्मन जैकोबी सा०, भारतकी थियोसोफिकल सोसाइटीकी अध्यक्षा श्रीमती विदुषी एनी बिसेन्ट महोदया, कलकत्ताके श्रीमान् डाक्टर सतीशचन्द्रजी विद्याभूषण एम० ए०, पी-एच० डी० सरीखे उच्च कोटिके अनेक गण्यमान जैनेतर तथा जैन विद्वानोंने उपस्थित होकर अधिवेशनको सफल बनाया था। इतना ही नहीं, उसी अवसर पर महाविद्यालयके अधिष्ठाता बाबू नन्दकिशोरजीने एक मुद्रित पर्चा शहरमें बँटवाकर जैनधर्मके प्रति शंका करने वाले जैनेतर विद्वानोंको अपनी शंकाओंका समाधान करनेके लिये आमंत्रित किया था। पर्चा इस प्रकार था—

'कल प्रातःकाल ८ बजेसे १० बजे तक टाउनहालके मैदानमें स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजीका प्रवचन होगा। जैनधर्मके सम्बन्धमें जिन महाशयोंको शंका होवे, वे वहाँ पधारकर पंडितजीसे समाधान कर समुचित उत्तर प्राप्त कर लें आदि।'

पिछली रात्रिका समय था, श्रीब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी श्री सेठी अर्जुनलालजीसे बातचीत करते हुए कह रहे थे कि काशी सरीखे संस्कृतज्ञ विद्वानोंको विवादके लिये आह्वान करके बाबूजीने ठीक काम नहीं किया है। सेठीजी भी उनकी इस आशंका से सहमत थे, परन्तु साथ ही साथ यह भी कह रहे थे कि पंडितजीकी सबल युक्तियोंसे सबका समाधान हो जावेगा, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

प्रातःकाल टाउनहालके मैदानमें शामियानेके नीचे नियत समय पर भरी हुई सभामें अनेक संस्कृत तथा अंग्रेजीके विद्वान् आये। पंडितजीका शास्त्र प्रवचन प्रारम्भ हुआ। सभा मंडप श्रोताओंसे खचाखच भरा था। पधारे हुए अनेक जैनेतर वेदान्त, नैयायिक, आर्यसमाजी आदि विद्वानोंने संस्कृत भाषामें अनेक प्रश्न पूछे—विवाद ग्रस्त विषयों पर तर्क-वितर्क किये जिनका उचित उत्तर पंडितजीने उन्हें दिया। उनके द्वारा दिये गये उत्तरोंसे तथा समाधानोंसे उन विद्वानोंको बड़ा सन्तोष हुआ। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि बातचीतके समय संस्कृतके न्याय, साहित्य, दर्शन आदिके विद्वानोंके परिमार्जित भाषामें पूछे गये प्रश्नोंका पंडितजीने उन्हीं सरीखे प्रौढ़ शब्दोंमें धारावाही भाषामें उत्तर दिया। उस समय ऐसा विदित होता था कि पंडितजीका जैनधर्मके समान अन्य दर्शन, तर्क तथा संस्कृत भाषापर भी पूर्ण अधिकार है।

## निस्पृहता तथा दृढ़ प्रतिज्ञता

एक बार बुंदेलखंडमें छतरपुर राज्यके महाराजा द्वारा जीवके अस्तित्व सम्बन्धी शंकाके निवारणार्थ निमंत्रित होकर पंडितजी छतरपुर पधारे और वहाँ महाराजा साहिबके आतिथ्यमें कई दिन रहकर उनकी शंकाओंका भली-भाँति

समाधान करके उन्हें सन्तुष्ट किया, जिसका महाराजा साहबने भारी आभार माना। उन्होंने पंडितजीसे और कुछ दिन ठहरनेका–यहाँ तक कि अपने स्थापित किये हुए सिद्धान्त विद्यालय सहित सकुटुम्ब छतरपुरमें आकर बसनेका आग्रह किया। आग्रह करने पर जब पंडितजीने ठहरना स्वीकार नहीं किया तब आपने राजमहलके फाटकके बाहर तक आकर एक बहूमूल्य मुक्ताओंकी मालासे आपको सन्मानित करनेके लिये हाथ बढ़ाये। तब पंडितजीने नम्रतापूर्वक कहा, जब आप सरीखे उदार महाराजाके सन्मुख मेरी प्रतिज्ञाका निर्वाह न हो सकेगा तो फिर वह जीवित कैसे रह सकेगी ? महाराज! उपहारमें इस मालाके स्थान पर पुष्पमाला प्रदान कर मुझे अनुग्रहीत करनेकी कृपा करें। मैंने बहुत वर्षों पूर्व प्रतिज्ञाकी है कि धार्मिक कार्योंके उपलक्षमें द्रव्य या वस्त्र आदि सामग्रीको बिदाईमें न लूँगा, यदि कोई देवेगा तो मात्र मार्ग व्यय ही लूँगा।

पंडितजीका चरित्र बहुत ही श्लाघनीय था। आपने जिस विषम झंझटयुक्त परिस्थितिमें रहकर अपना जीवन बिताते हुए जो महान् कार्य किया है, उसकी समतामें आपके स्वर्गवासी होनेपर आजतक कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया है। वे अपने वचनके धनी थे।

आपकी तीन प्रतिज्ञाएँ थीं—(१) किसीके यहाँ नौकरी न करेंगे, (२) धर्म-कार्यके अर्थ जानेपर विदाईमें कुछ न लेवेंगे और (३) उदर पोषणादिके लिये किसीसे द्रव्यकी भावना न करेंगे। इसके सिवाय अन्त समयतक जैनधर्मकी प्रभावना व जैन सिद्धान्तकी शिक्षाके प्रचारमें शक्तिभर योग देते रहेंगे।

आपकी गृहलक्ष्मी उन्माद रोगसे ग्रसित थीं। भौतिक लक्ष्मी ( सम्पत्ति ) ने कभी भी आपका आलिंगन नहीं किया। शरीर सदैव रोगोंसे विभूषित रहा। पुत्र परिस्थितिवश अपढ़ ही रहा। ऐसी महा विषम परिस्थितिमें रहते हुए भी आपने जन्मभर जैनधर्म, जैनवाङ्मय तथा राष्ट्रकी मन, वचन, काय इन तीनों योगों द्वारा जो सेवा की, वह जैन इतिहासमें सदैव अविस्मरणीय रहेगी।

आपने अनेक शिक्षा-संस्थाओंकी स्थापना कराई, जैन सिद्धान्तके मर्मज्ञ अनेक विद्वान् बनाये। आपकी निर्भीकता, निस्पृहता, कर्त्तव्यपालक वृत्ति, सदाचारिता, स्पष्टवादिता, सत्साहस आदि अनुपम गुणों द्वारा आप सर्वत्र सम्मानित हुए। आपके गुरुभाई पंडितप्रवर बलदेवदासजीके सुपुत्र श्री प्रेमराजजीने आपके पास मुनीम रहकर व्यापारिक कार्यमें आपको अच्छी सहायता पहुँचाई।

पूजनीय पंडित शिरोमणि पंडितजीने मोरेनामें ही अपनी शिष्यमंडलीके बीच समाधिमरण सहित अपनी जीवन-लीला समाप्त की।
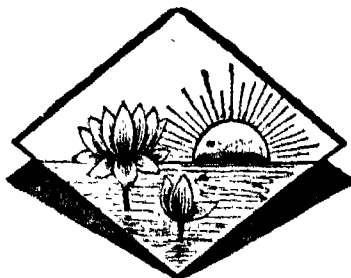
# सुधारकशिरोमणि वरैयाजी

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०, लखनऊ

●

आधुनिकयुगीन भारतीय इतिहासमें १९वीं शती ई० का उत्तरार्ध पुनरुत्थान एवं नवजागृतिका युग था। उस नवचेतनाके बीज उक्त शताब्दीके पूर्वार्धमें ही वपन होने प्रारम्भ हो गये थे और वर्तमान शतीके प्रथमपादका अन्त होते न होते उसके सुफल सर्व ओर लक्षित होने लगे थे। एक ओर पश्चिमी (यूरोपीय) सभ्यता और शिक्षाके प्रभावके कारण तथा दूसरी ओर उन्हींकी प्रतिक्रियास्वरूप इस देशने एक अँगड़ाई ली और राजनीतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्रोंमें ही नवजीवनका सूत्रपात नहीं किया, वरन् विभिन्न ज्ञान-विज्ञानों, पुरातत्त्व और कला, भाषा और साहित्य, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रोंमें भी क्रान्तिकारी मोड़ लिये और प्रगतिके पथपर नये सिरेसे अग्रसर हुआ। इस जागृतिकी लहरने समस्त देशको, भारतीय समाजके प्रायः सभी विभिन्न अंगोंको झंकृत कर दिया और प्रायः प्रत्येक क्षेत्रमें अनेक ऐसे कर्मठ, सेवाभावी, प्रतिभासम्पन्न एवं प्रभावपूर्ण नेताओंको जन्म दिया, जो इस जागृतिके पुरस्कर्त्ता और अग्रदूत हुए।

जैन समाज भी उस नवचेतनाकी छूतसे बचा नहीं रह सकता था। उसमें भी युगानुसारी नवीन प्राणोंके सञ्चारकी अत्यन्त आवश्यकता थी और इस महत्कार्यका सम्पादन करनेके लिये समर्थ एवं सुयोग्य नेताओंकी आवश्यकता थी। अतएव उस युगने उस समाजको भी वैसे पथप्रदर्शक और क्रान्तिकारी जनसेवक प्रदान किये ही। जैनजागृतिके इन पुरस्कर्ताओंकी अंतिम पंक्तिमें ही स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति आदि विरुद प्राप्त स्वनामधन्य गुरुवर्य पं० गोपालदासी वरैया आते हैं।

पं० गोपालदासजी वरैयाका जन्म मुगलबादशाहोंकी प्रिय राजधानी उत्तरप्रदेशस्थ आगरा नगरमें वि० सं० १९२३ में हुआ था। पिताका नाम लक्ष्मणदास था। घरकी स्थिति अति सामान्य थी। साधारण अंग्रेजी स्कूलकी सामान्य शिक्षा प्राप्त की और आजीविकाके लिये रेलवेमें क्लर्कीकी नौकरी की। विवाह हुआ, किन्तु पत्नी मनोनुकूल नहीं थी और अपने कर्कश स्वभावके कारण उनके लिये त्रासदायक ही बनी रही। तथापि उन्होंने उसके साथ अन्त-पर्यन्त निर्वाह किया। लड़कपनमें संगति भी कुछ अच्छी नहीं मिली, कोई प्रेरणा भी किसी दिशासे नहीं मिली और इस प्रकार उनके मात्र ५१ वर्षके जीवनकालका पूर्वार्ध प्रायः निरर्थक रहा, उनके अन्तरमें छिपी प्रतिभा और क्षमताओंके प्रस्फुटनका कोई सुयोग नहीं मिला और किसीको उनका आभास भी न हुआ। अकस्मात् एक विद्वान्के शास्त्रप्रवचनको सुनकर जीवनमें एक ऐसा जबर्दस्त मोड आया कि उसने उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्वकी कायापलट कर दी। अपनी परंपराके शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करने का उन्हें ऐसा चस्का लगा कि सब कुछ भूलकर उसीमें संलग्न हो गये। इतने तीव्र मेधावी और परिश्रमी थे कि कुछ ही वर्षोंमें, बिना किसी विद्यालयमें प्रविष्ट हुए ही और प्रायः बिना गुरुविशेषकी चरणसेवा किये ही, उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषाओंपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया और जैन सिद्धान्त, तत्त्वज्ञान, दर्शन और न्यायको आर्षग्रन्थोंकी सहायतासे हस्तामलकवत् कर लिया।

उन्हें इतनेपर ही सन्तोष नहीं हुआ—जिन अमूल्य तत्त्वरत्नोंका उन्होंने रसास्वादन किया था उसे सबके लिये उन्मुक्त करने और सबको उसका रसास्वादन करानेकी महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित होकर वे उसके प्रचारमें जुट गये। उस प्रचारके प्रायः सभी आधुनिक साधनोंका उन्होंने यथाशक्य उपयुक्त प्रयोग किया। वैयक्तिक शिष्य बनाये, विद्यालय खोले और खुलवाये, पठनक्रमकी व्यवस्थाके लिये परीक्षालय एवं परीक्षाबोर्डकी स्थापना की, यत्रतत्र घूम-घूमकर प्रवचन किये, भाषण और व्याख्यान दिये, वादियोंके साथ—विशेषकर आर्यसमाजी विद्वानोंके साथ—महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक शास्त्रार्थ किये, कलकत्ता आदि महानगरियोंमें जैनेतर प्राच्यविदों एवं दार्शनिक विद्वानोंकी सभाओंमें जैनदर्शनपर प्रभावशाली गंभीर व्याख्यान देकर सम्मान प्राप्त किया, पत्रोंमें लेख लिखे, जैनसिद्धान्तों एवं दार्शनिक मन्तव्योंको नवीन शैलीमें प्रस्तुत करनेवाली कई छोटी-बड़ी पुस्तकोंका निर्माण किया जिनमें एक रोचक उपन्यास भी है। शीघ्र ही वह आदरके साथ

'गुरुजी' कहलाने लगे और अपने समयके सर्वश्रेष्ठ जैन विद्वान्‌के रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। इतना सब करते हुए भी वे कभी भी किसी धनवान्‌की दया या आश्रयके पात्र नहीं बने, स्वतंत्र आजीविकाद्वारा अपना जीवन-निर्वाह अन्ततक करते रहे।

जैनत्वका उद्योत उनका परम लक्ष्य था और उसके लिये जैनसमाजमें जागृति उत्पन्न करना आवश्यक था। यह समयकी माँग थी और समय स्वयं साथ दे रहा था। अन्य समाजों और सम्प्रदायोंमें उनकी अपनी-अपनी प्रतिनिधि संस्थाएँ स्थापित हो रही थीं। आर्यसमाज आन्दोलन तो अपने उत्कर्षपर था, आर्यप्रतिनिधि सभाकी स्थापना हो चुकी थी, उसके प्रतिवादमें सनातनधर्म सभाएँ भी स्थापित हो रही थीं और अखिल भारतवर्षीय समस्त हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व करनेके लिये हिन्दूमहासभा भी स्थापित हो चुकी थी। अतएव जैनोंका प्रतिनिधित्व करनेके लिये पंडितजीने जैनमहासभाकी स्थापनामें पूर्ण योग दिया और कई वर्षतक उसका संचालन किया। वह कुछ काल बम्बईमें रहे तो वहाँ बम्बई प्रान्तीय दि० जैन सभाकी स्थापना कर दी और उसके मुखपत्रके रूपमें 'जैनमित्र' नामक सामयिक पत्र निकाला जिसका सम्पादन भी लगभग दस वर्षतक स्वयं ही किया।

उनके इन विविध समाजोन्नायक कार्यों एवं प्रवृत्तियोंके कारण अनगिनत व्यक्ति, विशेषकर वह जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे अथवा नवजागृतिकी लहरसे प्रभावित थे, उनके समर्थक, सहायक और अनुयायी बन गये। किन्तु उनके विरोधी भी अनेक उत्पन्न हो गये। पुरानी शैलीके कुछ पंडित उस समय भी थे जो अधिकतर किसी एक या अनेक धनिकोंके आश्रयमें पलते थे। यह पंडितवर्ग और इनका प्रश्रयदाता धनिकवर्ग रूढ़िग्रस्त, स्थितिपालक और संकीर्ण मनोवृत्तिके लोग थे। समाजपर अपनी सत्ता एवं नेतृत्व बनाये रखनेके लिये वे परस्पर निर्भर थे। पंडितजीके स्वतन्त्र, निर्भीक एवं क्रान्तिकारी विचारोंसे उनकी सत्ताकी नींव हिलने लगी। जनसामान्यकी शास्त्रीय अनभिज्ञताका लाभ उठाकर उसपर मनमाना शासन करनेके, उनके एकाधिकारको चुनौती दी जा रही थी, परिणामस्वरूप उनके भयङ्कर विरोधका सामना पं० वरैयाजीको करना पड़ा।

उनके विरुद्ध जो विरोधाग्नि बहुत समयसे भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी और अवसरकी ताकमें थी उसका तीव्र स्फोट दस्सा-बीसा प्रसंगको लेकर हुआ। दिगम्बर जैनधर्मानुयायी अग्रवालोंमें उस समय दो समूह थे—बीसा अग्रवाल और दस्सा अग्रवाल। प्रथमकी तुलनामें दूसरा समूह (दस्साका) जनबल और धनबल दोनों ही दृष्टियोंसे अत्यधिक निर्बल था। पूर्वकालमें जब जिस व्यक्तिने जातीय परम्पराकी अवहेलना करके किसी स्त्रीको अवैध रूपसे पत्नी बना लिया उसे और उसकी सन्ततिको दस्सा घोषित कर दिया जाता था, उनके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार भी बन्द कर दिया जाता था और उन्हें जिनमंदिरमें देवपूजन एवं प्रक्षालके अधिकारसे भी वंचित कर दिया जाता था। शनैः-शनैः इन दस्साओंकी संख्या काफी बढ़ गई और उनकी एक पृथक बिरादरी बन गई। उनमेंसे अनेकोंने जैनधर्मका त्याग भी कर दिया, किन्तु जो परिवार धर्मप्रेमी थे वे सब लांछन सहते हुए देवदर्शनसे ही सन्तोष करके जैन ही बने रहे। किन्तु अब समय बदल रहा था, प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारोंकी माँग करने लगा था। दस्सोंने भी यह आन्दोलन चलाया कि उनके ऊपरसे प्रतिबन्ध उठा लिये जायें और उन्हें भी बीसोंकी भाँति ही भगवान्‌का पूजन प्रक्षाल करने तथा अन्य धार्मिक कार्योंमें भाग लेनेका समान अधिकार मिले। यह माँग इसलिये भी उचित समझी जा रही थी कि न जाने कब, किस पूर्वजने, कौन ऐसे कार्य किये थे जिनके कारण उसकी वर्तमान सन्तति—बेशुमार पीढ़ियाँ बीत जानेपर भी—इस सामाजिक अत्याचारकी शिकार हो रही है जबकि वर्तमानमें अनेक प्रतिष्ठित घरोंके बीसे उनसे भी अधिक घृणित एवं निन्दनीय कार्य कर रहे हैं और उन्हें दस्सा कहने या बनानेका कोई साहस नहीं करता। दस्सोंको अपनी इस माँगमें अनेक सुधारप्रेमी बीसोंका भी समर्थन प्राप्त हुआ, राज्यका कानून भी अनुकूल था। अतएव जब समाजके श्रीमान् और धीमान् नेताओंको अनुकूल करनेके सब प्रयत्न व्यर्थ हो गये तो खतौली (जिला मुजफ्फरनगर, उ० प्र०) के निवासी लाला माड़ेलालने, जो दस्सा अग्रवाल थे और दिगम्बर जैनधर्मके कट्टर अनुयायी थे, स्थानीय बीसोंके विरुद्ध उनके धार्मिक अधिकारोंमें रोक लगानेका दावा अदालतमें कर दिया। इस दावेकी सुनवाई मेरठकी जजीमें हुई। इस मुकदमेसे समाजमें बड़ा बवण्डर मचा, आसपासके पाँच-छः जिलोंकी जैन-जनताने (जो अधिकांशतः बीसा अग्रवाल दिगम्बर जैनोंकी थी) उसमें गहरी एवं सक्रिय दिलचस्पी ली और समाजमें पक्ष-विपक्षरूपसे दो दल हो गये। बीसोंने अपने पक्षके शास्त्रीय समर्थनके लिये पं० पन्नालाल न्याय-दिवाकरको जो पुरानी शैलीके ऊँचे विद्वान् मान्य किये जाते थे और सहारनपुरके धर्मप्रेमी रईस लाला जम्बूप्रसादजीके प्रायः आश्रित थे, साक्षीके रूपमें पेश किया। दस्सोंके पक्षमें साक्षी देनेके लिये एक भी पंडित तैयार न हुआ। अन्ततः पं० गोपालदास वरैयासे प्रार्थना की गई और उस सुधारक शिरोमणि धर्मवीरने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

संयोगसे जज ( न्यायाधीश ) ईसाई या ऐंग्लोइंडियन था और उसका पेशकार मुसलमान था, उभयपक्षके वकील भी अजैन थे और अदालतकी भाषा—जिसमें गवाहोंके बयान आदि लिखे जाते थे—फ़ारसी लिपिमें लिखित उर्दू थी। वरैयाजीका बयान हो रहा था। मुख्य प्रश्न यह था कि व्यभिचारज व्यक्ति और उसकी सन्तति दस्से कहलाते हैं। किसी अपने ही जानकार व्यक्तिके संकेतपर दस्सोंके वकीलने वरैयाजीसे प्रथम तीर्थङ्कर भ० ऋषभदेव और उनके माता-पिताके सम्बन्धमें प्रश्न करने प्रारंभ कर दिये। त्रिलोकसारादि प्रमाणिक आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर पंडितजीने भोगभूमिकी व्यवस्था, उस कालके स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध आदिका विवेचन किया जिसका फलित जज, पेशकार और वकीलोंने यह निकाला कि क्योंकि आदि तीर्थङ्करके माता-पिताका तथा उनके भी (भोगभूमिया) पूर्वजोंका परस्पर विधिवत् विवाह नहीं हुआ था अतः वह आजकी भाषामें व्यभिचारज कहे जा सकते हैं और उर्दू भाषामें जो इज़हार कलमबन्द हुआ उसमें उन्हें 'जिनाकारोंकी औलाद' लिखा गया।

अब क्या था! समाजमें भयङ्कर विक्षोभ उत्पन्न कर दिया गया। न्यायदिवाकरजी अदालतमें न तो अपने प्रतिपक्षीकी ही कोई काट कर सके और न उनके बयानका ही कोई उचित समन्वय या समाधान कर सके, किन्तु बाहर आकर उनके दलने सारा आक्रोश वरैयाजीके ऊपर उतारा। इजहारकी नकलें ली गईं, उसकी प्रतियाँ छपवाई गईं और सर्वत्र जैनसमाजमें भेजी गईं। जगह-जगह सभाएँ की गईं, पत्रोंमें लेखबाजी चली, अनेक पम्फलेट छापाये गये। वरैयाजीको जी भरकर बदनाम किया गया, धमकियाँ दी गईं और समाजसे उन्हें बहिष्कृत करनेके प्रयत्न किये गये। दिगम्बर जैन समाजके उस कालके प्रायः समस्त पुरानी शैलीके पंडित और प्रायः समस्त अग्रवाल, खण्डेलवाल, परवार धनिक नेता वरैयाजीके विरोधमें एक हो गये थे किन्तु वह थे कि तनिक भी विचलित नहीं हुए।

किसी व्यक्तिके शिष्य, भक्त, अनुयायी या समर्थक उसके विषयमें जो कुछ लिखते हैं या उसका जो गुणानुवाद करते हैं वह बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण और कभी-कभी पक्षपातपूर्ण भी हो जाता है। उसके व्यक्तित्वकी अनेक विशेषताओंका उससे सम्यक् बोध नहीं हो पाता। किन्तु उस व्यक्तिके विरोधी प्रसंगवश, अनजाने या कभी-कभी विवश होकर उसके जिन गुणोंका परिचय दे जाते हैं वह अन्यत्र नहीं मिलता। उसकी सत्यतामें भी कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। उपरोक्त विस्फोटके परिणामस्वरूप जो दो-एक वर्षतक पक्ष-विपक्षकी ओरसे आन्दोलन और पैम्फलेटबाजी हुई उसमें कलकत्ता और बम्बईके किन्हीं आठ प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने, जो संभवतया वरैयाजीके समर्थक थे, 'जैनियोंमें अशान्ति' शीर्षकसे २४ पृष्ठोंकी एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसके उत्तरमें विपक्षकी ओरसे 'अशान्तिका प्रतीकार' नामक २६ पृष्ठोंकी पुस्तिका प्रकाशित की गई थी। इसके प्रकाशक दिगम्बर जैनाम्नाय संरक्षिणी सभा खुर्जाके मन्त्री सेठ जयनारायण रानीवाले थे, मुद्रक—बम्बईभूषण प्रेस, मथुरा था और यह पुस्तिका उक्त सभाके उन ३७ सदस्योंकी आज्ञानुसार प्रकाशित एवं प्रचारित की गई बताई गई है जिनकी सूची इस वक्तव्यके साथ उसके अन्तमें दी है। इन सज्जनोंमें तत्कालीन दिगम्बर जैन समाजके प्रायः सभी श्रीमान् और पंडितजन समाविष्ट हैं, यथा, मथुराके सेठ दामोदरदास, इन्दौरके सर सेठ हुकुमचन्द, अजमेरके सेठ नेमिचन्द सोनी, सहारनपुरके लाला० जम्बूप्रसाद और हुलासराय, खुरईके सेठ मोहनलाल, ललितपुरके टड़ैयाजी, खुर्जाके सेठ मेवाराम, अम्बालाके लाला शिब्बामल, फिरोजपुरके लाला देवीसहाय, ब्यावरके सेठ चम्पालाल इत्यादि, पंडितोंमें सुनपतके उमरावसिंह, जयपुरके जवाहरलाल, अलीगढ़के श्रीलाल व प्यारेलाल, कोसीके कन्हैयालाल इत्यादि हैं। पुस्तिकापर प्रकाशन आदिकी कोई तिथि-वर्ष नहीं है किन्तु उपरोक्त घटनाके चार-छः मासके भीतर ही यह प्रकाशित हुई प्रतीत होती है। इस पुस्तिकामें पं० वरैयाजी और उनके अनुयायियों या समर्थकोंको भरपेट प्रसाद वितरण किया गया है।

नीचे इस पुस्तिकामेंसे कतिपय वह अंश उद्धृत किये जाते हैं जिनसे पं० गोपालदासजी वरैयाके विचारों, दृष्टिकोण, व्यक्तित्व एवं उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रभावका परिचय उनके कट्टर विरोधियोंकी लेखनी द्वारा प्राप्त होता है—

पृ० २–३—'पुस्तक ( जैनियोंमें अशान्ति ) के लेखकोंने जो दस्सा बीसा अग्रवालोंके मुकदमेको अग्निकी उपमा दी है उसे हम भी स्वीकार करते हैं। परन्तु इस आगको सुलगानेका कलंक बीसाओंके मस्तकपर कदापि नहीं मढ़ा जा सकता क्योंकि उन्होंने तो दस्साओंको प्रक्षालपूजाका अधिकार न देकर आर्षवाक्योंका पालन किया है। अतः धर्मविरुद्ध अधिकारको प्राप्त करनेकी लालसासे अदालतमें पहिले जानेवाले दस्सा लोग ही इस यशके भागी हैं और इसी तरह इस आगकी चिनगारियोंमें समूचे जैनसमाजको सुलगानेका महायश भी पं० गोपालदासजी व उनके अनुयायी भाइयोंके ही भाग्यमें है। जो तीर्थङ्करोंको जिनाकारोंकी औलाद बतलाकर भी अबतक भूल स्वीकार न कर प्रत्युत अपने कथनकी पुष्टि ही कर

रहे हैं और यह पुष्टि पंडितजीकी घरेलू सभा ( दिगम्बर जैन महासभा ? ) के मन्त्री एवं शिष्य महाशय द्वारा जैनप्रचारक अंक नौमें किये हुए २४ प्रश्नोंसे साफ़ टपक रही है।'

पृ० ३—'फिर भी आप लोग हमको ही विरोधवर्धक समझें तो पं० गोपालदासजीकी सुबुद्धिसे उत्पन्न हुए **'उन्नतिका मार्ग विरोध के दाँतोंमें होकर है'** इस सिद्धांतके अनुसार हम विरोधी ही सही क्या हर्ज है।''

पृ० ४—'पं० गोपालदासजीके इजहार सर्प के समान हैं ये आपको हमारी सभाकी तरफसे लिखे हुए लेखों द्वारा विदित हो गया और हो जायगा।'

पृ० ५—'पं० गोपालदासजी अग्रवालोंके दस्सोंको बीसोंमें मिलानेकी फिकरकर तीर्थंकरोंको कलंकित कर रहे हैं यह कहाँकी बुद्धिमत्ता है। क्या पंडितजी महाराज दूसरोंको ही डुबोना जानते हैं। अपने प्रातःस्मरणीय पूज्य गुरुजी (गोपालदासजी) के कदम पर कदम धरनेवाले अशांतिजनकों ने अवसर्पिणीके छठे कालके जीवोंको व्यभिचारी बताया है सो सर्वथा व्यवहार व आगमके विरुद्ध है।'

पृ० १०—'हाँ दस्सोंको शुद्ध करनेवाले पण्डितजी व उनके अनुयायिओंको कर्णपिशाचिनी सिद्ध हो गई हो वा उनके पास मथुराके पण्डों व गया के गुरुओंकी तरह दस्सोंकी वंशावली मौजूद हो तो दूसरी बात है।'

पृ० ११—'यदि फिर भी जातिभेदके शत्रु जबरदस्ती त्रिवर्णाचारके कथनको अमलमें लावें तो उससे जैन-समाजमें इकदम नये परिवर्तनके कारण अशान्ति फैलनेके सिवाय कुछ भी फल न होगा; क्योंकि जैसे उच्च आचरणको देखकर नीच उच्च बनाये जावेंगे ठीक वैसे ही वर्त्तमानमें नीचाचरण करनेवाले बीसा जैनी उच्चोंमेंसे निकालकर नीचोंमें शामिल किये जावेंगे। और ऐसी हालतमें उन्नतिकी लालसासे जैनसमाजमें सर्वमयी भगवान्की कहावतको चरितार्थ करने-वाले लेखकोंके मनोरथमें कुछ भी सफलता न होगी।'

पृ० १२—'पं० गोपालदासजी व उनके अनुयायियोंके, जिसकालमें विवाह सम्बन्ध नहीं होता उस कालके इन्सान व्यभिचारी होते हैं इस सिद्धांतके अनुसार श्रीमदादितीर्थंकर व्यभिचारज सिद्ध हो जावेंगे। क्योंकि इनके पूर्वजोंमें पाँच पुश्तमें विवाह सम्बन्ध जारी नहीं था तब कहिये पाँच पीढ़ीमें शुद्ध होनेका नियम कहाँ छिपता फिरेगा।'

पृ० १३—'स्वतन्त्रताके प्रेमियोंने पूर्वजों द्वारा सुविचारसे स्थापित की हुई वर्ण और जाति सम्बन्धी व्यवस्थाके अनुसार चलनेवाले आप व हमको जो लकीर के फकीर व रूढ़ीके गुलामोंकी उपमा दी है और हमारे अगुए दो प्रकारके हैं इस शब्दके छलसे हमलोगोंके श्रीमानोंको मूर्खा सदसद्विवेकशून्या लक्ष्मीके दास और विद्वानोंको स्वार्थसाधक तथा बुरे कार्योंमें योग देनेवाले लिखे गये हैं सो ठीक ही है क्योंकि जैसे मिष्ट पदार्थसे द्वेष रखनेवाला ऊंट उसके आधार भूत पौंडेको भी बुरी दृष्टिसे देखता है उसी प्रकार सदाचारके द्वेषी और विदेशियोंकी देखा देखी येन केन उपायसे लौकिकोन्नतिके इच्छुक इन लेखक महात्माओंको भी सदाचारके प्रचारक हम लोग अपने कर्त्तव्यपथके कंटक दिखलाई देते हैं।'

पृ० १५—'जिन लोगोंके जोशके विषयमें यह लिखा गया है कि 'अज्ञानांधकारको देखकर इससे मस्त नहीं हुआ; सो तो खरविषाणवत् सर्वथा असत्य है। क्योंकि वे लोग लाखों रुपये विद्या वृद्धिके कार्योंमें खर्च करने के सिवाय तन-मनसे भी प्रयत्नशील हैं। और यदि इन लोगोंने कुछ नहीं किया है तो लेखकोंने ही कौनसा यशका कार्य कर लिया है।'

पृ० १६—'लेखक सूना मैदान देख यह कनखव्वा उड़ा रहे है कि पं० गोपालदासजीने तीर्थकरोंपर आनेवाले कलंकका प्रक्षालन किया है।'

पृ० १७—'लेखकोंके धुरन्धर परमगुरु पं० गोपालदासजी ऐसे दोषी वचन नहीं कह सकते तो उनसे न्याय व्याकरण, साहित्य और आगमरूप चारों विद्याओं तथा वक्तृत्त्व वादित्व आदि गुणोंमें अधिकतर श्रीमान् न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी·········तीर्थंकरोंको कलंक लगानेवाले वाक्य कैसे कह सकते थे जिससे कि पं० गोपालदासजीको उस कलंक का प्रक्षालन करते हुए छब्बे बननेके बदले चोवेसे दूबे होना पड़ा।'

पृ० २०—'वरैयाजातिके पं० गोपालदासजीको जातिच्युत किये ही किसने है!····हाँ अन्तरंगमें पं० गोपालदासजीसे द्विधाभाव रख उन लोगोंने हमे मार्ग सुझानेकी कृपा की हो तो दूसरी बात है।'

'पंडितजीके मुखका शास्त्र न सुननेसे ज्ञानप्रचारके रोकनेका भागी कौन होगा? इस लेखकोंके प्रश्नका उत्तर यही है कि कोई भी नहीं और होंगे तो आप। हमने तो 'अलं तेनामृतेन यत्रास्ति विष संसर्गः'····इस नीति वाक्यानुसार कहीं कहा सर्वथा आगमविरुद्ध कथनकर जानेकी आदतसे अपनी विद्याशक्तिका दुरुपयोग करनेवाले पं० गोपालदासजीके मुखसे शास्त्र सुननेका निषेध किया है सो ठीक ही है।'

'महासभाका कार्य पं० गोपालदासजीसे छीननेवाले हम तो नहीं परन्तु 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसंरक्षिणी महासभा' यह महासभाका नाम ही कभी न कभी उनके हाथमेंसे कार्य छीन लेनेकी शक्ति रखता है।'

पृ० २०-२१—'रही एकाधिपत्यकी बात सो यह नहीं है तभी तो लोग कोठे कोठे मीर बन मनमानी कर रहे हैं। नहीं तो क्या मजाल था कि जो पं० गोपालदास जी सरे अदालतमें तीर्थंकरोंको व्यभिचारज कह आते और उनके चेले समर्थन करनेका हौसला बढ़ाते।'

पृ० २१—'धनाढ्योंकी एकत्रतामें जात्युद्धार होनेकी आशाको भ्रम कहा है सो लेखकोंको बुद्धिका ही भ्रम है क्योंकि उन्नतिरूप रथके एक चक्र (पहिया) रूप होनेसे धनिकोंके बिना जात्युद्धार न कभी हुआ न होनेकी संभावना है।'

पृ० २२—'पं० गोपालदासजीके शास्त्रविरुद्ध इजहारोंका प्रतीकार करनेके लिये इतना आडम्बर रचनेकी आवश्यकता यों हुई कि जैसा विपक्षी होता है उसके लिये वैसी ही सामग्री जोड़ी जाती है। भला विचार तो कीजिये शिष्टवर! जो पं० गोपालदासजी कुछ लोगोंकी सहायतासे मानके अटल सिंहासन पर आरूढ़ हो अधिकांश जैनसमाजको तुच्छ समझ अब तक सभाके प्रार्थी नहीं हुए हैं वे अन्य उपायोंसे कैसे बाजि आ सकते थे।'

'पक्षपातकी निद्रामें पण्डितोंको धनाढ्योंकी खुशामदमें लगे हुए दिखलानेका स्वप्न देखनेवाले लेखक सज्जन धोखा खा रहे हैं। आज तो जैन समाजमें कुछ अजब-गजब रंग-ढंगका ही साज-बाज है। वह यह कि एक अकिंचन और निर्धन पण्डितके मुखसे निकले हुए शब्दोंको वेदवाक्य समझकर कुछ लक्ष्मीपात्र ही प्रातःस्मरणीय पूज्यपादादि विशेषण लगाकर पण्डितोंके पृष्ठमर्दक बन गये हैं।'

पृष्ठ २३—'कि पं० गोपालदासजी आपके और हमारे कहनेसे विचार नहीं बदल सकते तो लेखक और हम तो क्या हमारी समझमें वे अपने हठको वृहस्पतिके समझानेपर भी नहीं छोड़ सकते।'

ऐतिहासिक महत्त्वके इन उपरोक्त उद्धरणोंमें पं० गोपालदासजी वरैयाके युगकी जैनसमाजकी भी अच्छी झाँकी मिल जाती है और पंडितजीके व्यक्तित्वका वह पक्ष जिसकी ओर अपेक्षाकृत बहुत कम ध्यान दिया जाता है स्पष्टतया उभरकर सामने आ जाता है। वह एक उत्कृष्ट समाज-सुधारक थे और समाज विरोधोंका निर्भीकताके साथ डटकर मुकाबिला करते थे। उनका यह वाक्य तो स्वर्णाक्षरोंमें अंकित किये जाने योग्य है कि—

उन्नतिका मार्ग विरोधके दाँतोंमें होकर है।'

# संस्मरण

•

# विलक्षण प्रतिभाके धनी

स्व० श्री गणेशप्रसादजी वर्णी ( मुनिश्री गणेशकीर्त्तिजी महाराज )

●

श्रीमान् गुरुवर्य पंडित गोपालदासजी वरैया इस युगके महापुरुष थे। आपकी सहनशीलता, उदारता, समयानुकूल बुद्धि, निस्पृहता निर्भीकता, तथा अचौर्यादि अनेक विशेषताएँ थीं जो स्वयं प्रसिद्ध हैं। उनका कहाँ तक वर्णन किया जाय, हमारी बहुत असमर्थता है।

## प्रथम घटना

आप परीक्षाप्रधानी प्रथम श्रेणीके थे। एक बारका जिक्र है—जब हम महाविद्यालय मथुरामें पढ़ते थे तब पंडितजी उसके मुख्य मन्त्री थे, आगरामें रहते थे। मथुरामें पढ़ते हुये एक दिन हमारी इच्छा सागर जानेकी हुई। तब यह विचार किया कि कोई ऐसा बहाना किया जाय जिससे छुट्टी मिल जाय। तत्काल एक युक्ति सूझ आई। हमने मथुरा से ही एक कार्ड लिया और उसमें बाईजीकी तरफसे लिखा कि 'बेटा, मेरी तबियत ठीक नहीं है। तुम १५ दिनके लिए चले जाओ।' चिरौंजाबाई

यह कार्ड मैंने अपने पतेसे डाकखानेमें डाल दिया। दूसरे दिन वह पत्र मुझे मिल गया। मैंने वह पत्र लिफाफेमें बन्द करके पंडितजीके पास भेज दिया। पंडितजीने कार्डकी मुहर पर मथुरा देखकर समझ लिया कि यह छात्र घर जाना चाहता है। इसको रोकना अच्छा नहीं है। उसी समय एक पत्र पंडितजीने लिखा कि इस छात्र को जाने दिया जाय, १५ दिनकी छुट्टी दी जाती है। छुट्टी बाद जब घरसे लौटे, तब पहले हमसे मिलकर मथुरा जाय। पत्र मिलते ही मैं घरको चल दिया। सागर पहुँचा, बाईजीने पूछा—भैया ! अचानक बिना सूचनाके कैसे आगये। अच्छे तो हो। मैंने अपने बहानेकी, मन न लगनेकी बात ज्यों की त्यों बता दी। १५ दिन पूर्ण हुये, फिर मैं बाईजीसे आज्ञा माँगकर सागरसे चल दिया और प्रातःकाल आगरा पंडितजीके पास पहुँच गया। पंडितजीने मुस्कराते हुये बड़े प्रेमसे बैठाया और कहा कि आ गये। अच्छा ठहरो ! भोजन कर लो !! फिर मथुरा जाना। मैंने कहा ठीक है। दर्शन आदिके अनन्तर भोजन किया फिर पंडितजीसे मथुरा जानेकी आज्ञा माँगी। तब पंडितजीने कहा—पहले एक श्लोक याद करलो तब मथुरा जाना—

उपाध्याये नटे धूर्ते कुट्टिन्यां च तथैव च।<br>माया तत्र न कर्त्तव्या माया तैरेव निर्मिता॥

यह श्लोक मुझे शीघ्र ही याद हो गया। मैंने कहा, पंडितजी ! मुझे याद हो गया। पंडितजीने कहा—इसका क्या अर्थ समझे ? मैंने नम्र प्रार्थना करते हुए कहा 'महाराज ! मैंने बड़ी गलती की है जो आपको पत्र देकर असभ्यताका व्यवहार किया।' गुरुजीने कहा 'हम तुमसे खुश है, यदि इसी प्रकारकी प्रकृति ( अपराध स्वीकृत कर लेनेके स्वभाव ) को अपनाओगे तो आजन्म आनन्दसे रहोगे। हम तुम्हारे व्यवहारसे सन्तुष्ट हैं और तुम्हारा अपराध क्षमा करते हैं। तुम्हें जो कष्ट हो हमसे कहो, हम निवारण करेंगे। जितने छात्र हैं, हम उन्हें पुत्रसे भी अधिक समझते हैं। यदि जैनधर्मका विकास होगा तो इन्हीं छात्रोंके द्वारा होगा। इन्हींके द्वारा धर्मशास्त्र तथा सदाचार की परिपाटी चलेगी। जाओ, आनन्दसे पढ़ो। अब आगे ऐसा न करना।'

तब मैं मथुरा चला गया। पंडितजीने पीछेसे एक पत्र लिख दिया कि इस विद्यार्थी का दिमाग कमजोर है, अतः चार रुपया मासिक दूध पीनेके लिये दिया जावे। इस तरह मैं पंडितजीका कृपापात्र बन गया।

## द्वितीय घटना

आप धर्मशास्त्रके अपूर्व विद्वान् थे। आपका ध्येय इतना उच्चतम था कि चूँकि जैनियोंमें प्राचीन विद्या व धार्मिक ज्ञानकी महती त्रुटि हो गई है, अतः उसे पुनरुज्जीवित करना चाहिये। आपका निरन्तर यही ध्येय रहा कि जैनधर्ममें सर्वविषयके शास्त्र हैं, अतः पठनक्रममे जैनधर्मके ही शास्त्र रक्खे जावें। आपका यहाँ तक सदाग्रह था कि व्याकरण भी पठनक्रममें जैनाचार्यकृत ही होना चाहिये।

एक समय महाविद्यालय मथुरामे पठनक्रमके निर्धारण करनेके लिए समिति हो रही थी, जिसमें पंडितजी भी आगरासे आये थे। मध्याह्नमें बैठक हो रही थी। विषय यह था कि व्याकरणमें कौनसी पुस्तक रखी जाय। पंडितजीने 'कातंत्रव्याकरण' रखनेका निर्णय किया। प्रसंगवश मैं भी विद्यार्थी अवस्थामें विनयपूर्वक पंडितजीके पास पहुँच गया और भक्तिपूर्वक कहा कि 'लघुकौमुदी' को रखना चाहिये। पंडितजी नाराज होकर बोले—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैंने कहा कि क्या इससे जैनधर्मकी उन्नति घट जायगी? तब पंडितजीने कहा कि इस छात्रको पृथक् कर दो। मैंने निवेदन किया कि मैं अन्यत्र जाकर पढ़ लूँगा, इसमें आप चिन्ता नहीं कीजिये। यह वृतान्त लाला छन्नोमलजी बम्बई वालोंने सुना, जिससे कुछ उनके हृदयमे क्षोभ हुआ। आपने पंडितजीको लिखा कि ऐसा नहीं करें। छात्रको पृथक् न किया जाय। छात्र मिलते कहाँ है जो आप ऐसा कर रहे हैं। इसपर पंडितजीने पढ़नेकी पुनः स्वीकारता दे दी।

मैंने भी मुरैनामें तीन मास तक पंडितजीके सन्निधानमें कुछ अध्ययन किया था। फिर कारणवश पढाई छोड़कर अन्यत्र चला जाना पड़ा।

## तृतीय घटना

एक बार मुरैनामें डाकू आ गये, बाजारमें हल्ला हो गया। पंडितजी भी दुकान खोलकर दिनमें बैठे थे। पंडितजीको एक युक्ति सूझ आई—दुकानमें सब जगह बोरा फैला दिये, सन्दूक भी वहीं रखी रहने दी। उसपर भी बोरा डाल दिया। दुकान खुली छोड कर पंडितजी बाहर निकल गये। कुछ समय बाद डाकू दुकानमें घुस गये तथा सब जगह बोरा फैले हुए देखकर वे खाली हाथ चले गये। उन डाकुओंने कोई चीज नहीं छुई। पंडितजी कुछ समय बाद दुकानमें आये और सब चीज व्यवस्थित देखकर प्रसन्न हुए। धर्मके प्रसादसे सर्वत्र विजय और लाभ होता है।

## चतुर्थ घटना

श्री स्व० पूज्य पं० बलदेवदासजी भी आगरेमें रहते थे तथा अपने समयके अद्वितीय महाविद्वान् थे, जिन्होंने भाष्यान्त व्याकरण पढ़ा था। 'सर्वार्थसिद्धि' की पचासों बार आवृत्ति की थी। आपकी मंदकषायकी सर्वत्र प्रसिद्धि थी। व्याकरण विद्याके गुरु पं० ठाकुरदासजी दो विषयके आचार्य थे। जब वे आपके पास आते थे तो उनको देखते ही उठकर खड़े हो जाते थे। तब आचार्यजी कहते थे कि पंडितजी, उठनेकी क्या जरूरत है, आप तो बलदेव नहीं देव हैं। ऐसे महाविद्वान् पंडितजीके पास कोई पुरुष करणानुयोगकी शङ्का लेकर आता था तो वे स्पष्ट कह देते कि भाई! इस बालकसे पं० गोपालदासजीसे पूछो, वे अच्छी तरह तुम्हारा समाधान कर देंगे। लिखनेका मतलब यह है कि उस समय वरैयाजी करणानुयोगमें अद्वितीय विद्वान् माने जाते थे। यह उन्हीका प्रताप है जो आज धवलादि सिद्धान्तशास्त्रोंके विद्वान् देखे जाते हैं। समाजमें गोम्मटसारका अध्ययन आपसे ही प्रारम्भ हुआ है। मुरैनामें महाविद्यालयकी स्थापना आपकी ही अनुपम देन है। 'सुशीला उपन्यास', 'जैनसिद्धान्त दर्पण', 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' और 'जैन-जागरफी' आदि ग्रन्थोंकी रचना कर आपने जैन-साहित्यकी विस्तृत सेवा की है।

## पंचम घटना

आप केवल विद्वान् ही नहीं, सदाचारी भी अद्वितीय थे। आपका आगरेमें मकान था। म्युनिसिपल जमादारने शौच-गृहके बनानेमें बहुत बाधा दी। यदि आप दस रुपये घूस दे देते तो मुकदमा न चलता, परन्तु पंडितजीको घूस देनेका त्याग था। मुकदमा चला, बहुत परेशानी उठानी पड़ी। सैकड़ों रुपयोंका व्यय हुआ। अन्तमें आप विजयी हुए।

## षष्ठ घटना

पंडितजी अजमेरमें रेलवेकी नौकरी करते थे। आपको गणितका ज्ञान अच्छा था। इस विशेषताको देखकर एक ओसवाल भाईने कहा कि आप मन्दिर आते हो, थोडा स्वाध्याय किया करो। वरैयाजीने कहा—मैं संस्कृत-प्राकृत नहीं

जानता। तब उन्होंने कहा कि मैं आपको बताऊँगा। तब दोनोंने बैठकर जीवकाण्डकी २०० गाथा तक परस्परमें स्वाध्याय किया। तत्पश्चात् भाईजीने कहा कि पंडितजी आप विज्ञ हैं—स्वयं स्वाध्याय करिये। पंडितजीको ऐसी रुचि हुई कि फिर गोमटसारको छोड़ा ही नहीं।

आप धर्मशास्त्रके अपूर्व विद्वान् थे। केवल धर्मशास्त्रके ही नहीं, द्रव्यानुयोगके भी अपूर्व विद्वान् थे। 'पंचाध्यायी' के पठन पाठनका प्रचार आपहीके प्रयत्नका फल है। इस ग्रन्थके मूल अन्वेषक श्रीमान् पंडित बलदेवदासजी हैं। उन्होंने अजमेरके शास्त्र भंडारमें इसे देखा और श्री बरैयाजीको अध्ययन कराया। अनन्तर उसका प्रचार बरैयाजीने अपने शिष्योंमें किया।

रायपुरमें वहाँके स्थानीय जैनसमाजके भाइयोंने पंडितजीका अभूतपूर्व स्वागत किया और हाथीपर जुलूस निकाला। कई आम सभाएँ हुईं।

## सप्तम घटना

एक बार पंडितजी और देवकीनन्दनजी इटावा गये। वहाँ पंडितजीको दस्त लगने लगे, जिससे कोई उपाय सूझ न पड़ा, बड़ा ही कष्टका अवसर था; क्योंकि पंडितजी जब शौच जाते, तब धोती बदलकर जाते तथा पीछे हाथ-पैर धोनेको जल चाहिये। जल रखनेको वर्तन भी न था। रात्रिका समय था। श्री पं० देवकीनन्दनजीको एक युक्ति सूझ पड़ी। एक हलवाईके पास गये—उससे कहा, भाई ! हमको इस कड़ाहेकी जरूरत है, जो भाड़ा लगे सो ले लीजिये। हलवाईने भाड़ेपर कड़ाहा दे दिया। तब अपने स्थानपर उठा लाये और छने जलसे भर दिया जिससे हाथ-पैर धोनेका काम चला। धोतीके टुकड़े कर लिये गये—जिससे धोती बदलनेकी कोई कठिनाई नहीं हुई। तब ४०-५० दस्त लगनेके बाद कुछ शान्ति आई और कुछ समय बाद दस्त बन्द होने लगे। पं० देवकीनन्दनजीने यह सेवा बहुत आनन्द एवं धैर्यपूर्वक की। पंडितजीने शान्त परिणामोंसे सब सहन किया।

पंडितजीकी अन्तरंग बहिरंग दोनों ही निर्मलताएँ थी। वह सतत अपनी चर्यामें सावधान रहते थे। इसी अलौकिक वृत्तिके कारण आप सबके आदर्श थे। गुरूजीने कभी अपने मुखसे किसीके प्रति अपशब्द नहीं कहे। सर्व जीवोंके प्रति उनकी अमोघ मैत्री थी। लोभ किसी प्रकारका नहीं था, इसीसे प्रतिभा शक्ति विलक्षण थी। दूरसे ही आदमीको पहचान लेते थे।

एक बार पंडितजी घरमें भोजन कर रहे थे। उस समय दो विद्यार्थी बाहरसे पढ़नेके लिये आये। पंडितजीने बुलाया और ठहरनेके लिये कहा। पंडितानीजी बहुत नाराज हुईं और बोलीं कि इन्हें कौन बनाकर खिलावेगा। पंडितजी चुप ही रहे। पंडितानीजी अधिक बोलती रहीं। सुनते-सुनते जब पंडितजी घरसे बाहर निकले तब पंडितानीने उठकर क्रोधमें पंडितजीके ऊपर पानी डाल दिया। पंडितजीने प्रसन्नमुद्रामें कहा कि गरजी तो बहुत, बरषी आज ही। इन मधुर शब्दोंको सुनकर पंडितानी भी शान्त हो गईं और हँसने लगीं।

इस तरह पंडितजी अपनी दुकानका काम तथा विद्यालयका काम किया करते थे। व्यापारकी अपेक्षा पढ़ानेकी तरफ ही आपका विशेष झुकाव था, जिससे विद्यालयका रूप स्वयं ही बन गया। उस समय मोरेना विद्यालयकी गिनती श्रेष्ठ विद्यालयोंमें मानी जाती थी।

वह युग था, जिसमें धर्मस्नेहवश छात्र पढ़ा करते थे। आजके युगमें धर्मका स्नेह बहुत दुर्लभ होता जा रहा है। जैनधर्मके प्रचारकी तो सदैव आवश्यकता है। इस युगमें तो और अधिक है। जो वीतराग प्रभुने देखा है सो होगा। हमें विकल्प करनेकी जरूरत नहीं है।

वास्तवमें पंडितजीका जीवन इस युगमें धर्मके उद्धारके लिये ही हुआ था। आचार-विचार, ज्ञान-दर्शन मत आदिमें सर्वतोमुखी प्रतिभा थी। प्रथमानुयोगका स्वाध्याय उस कालमें सर्वत्र प्रचलित था। करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोगका स्वाध्याय तथा शिक्षण आपके ही अथक परिश्रमका फल है। आज जो भी विद्वान् दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सब आपके ही शिष्य-प्रशिष्य हैं।

महाराष्ट्र प्रान्तमें आपके निमित्तसे धर्मका प्रचार हुआ। सोलापुरके दानवीर सेठ हरीभाई देवकरणजीने आपके उपदेशसे प्रभावित होकर मोरेनामें 'जैन सिद्धान्त विद्यालय'की स्थापना कराई थी, जो आज भी अपना कार्य कर रहा है।

आपके साथमें बाबा ठाकुरदासजी भी रहते थे, जिन्होंने अन्तिम जीवनमें सानन्द धर्म साधन विद्यालयमें किया। ऐसी धर्मशिक्षा अन्यत्र दुर्लभ थी। उसी शिक्षाको प्राप्त करनेके लिये श्री अनन्तकीर्ति मुनि महाराज दक्षिण देशसे पधारे थे, परन्तु उनकी असमयमें समाधि हो गई। उनकी तपस्या इतनी प्रबल थी कि उनके निमित्तसे मोरेना एक तीर्थस्थान बन गया।

पंडितजीने अपने जीवनमें धन-धान्यादिसे तथा पुत्र-पौत्रादिकी समृद्धि देखी। वह युग था जब पंच-अणुव्रतोंका कथन और ग्रहण बड़ा कठिन माना जाता था, तब पंडितजीने उनकी सरलता दिखाकर बहुतोंको व्रती बनाया। उस समय जितने भी सेठ श्रीमन्त थे, वे सब आपका आदर करते थे तथा समय-समयपर उत्सवोंमें आपको आमन्त्रित करते थे। आपकी वाणी बड़ी ओजपूर्ण आगमके अनुकूल थी, जिसको सब श्रोतागण चित्रलिखितसे होकर सुना करते थे। सिद्धान्तके गूढ़ प्रश्नोंका वे समाधान कर देते थे। ऐसे पंडितजी चतुरस्त्रयबुद्धि ( वादी, वाग्मी, गमक और कवि ) थे। उनकी जो भी महिमा लिखी जाय थोड़ी है।

# उनकी सीख

स्व० महात्मा भगवानदीनजी

●

हमने 'पं० गोपालदासजी वरैया जैसा दूसरा आदमी समाजमें आजतक नहीं देखा, पर यह बात तो हर आदमीके लिए कही जा सकती है। नीमके पेड़के लाखों पत्ते एकसे नहीं होते, पर सब हरे और नुकीले तो होते हैं। समाजके हर आदमीसे यह आशा की जाती है कि वह कम-से-कम अपने समाजके मेम्बरोंको सताये नहीं, उनसे झूठा व्यवहार न करे, उनके साथ ऐसे काम न करे, जिनकी गिनती चोरीमें होती है। समाजमें रहकर अपनी लँगोटी और अपने आँखके बाँकपनपर पूरी निगाह रखे और अपनी ममताकी हद बाँधकर रहे। इन पाँच बातोंमें जिन्हें अणुव्रत यानी छोटे व्रतके नामसे पुकारा है, वे पूरे-पूरे पक्के थे और पाँचों अणुव्रतोंको ठीक-ठीक निभानेवाला समाजमें हमारे देखनेमें कोई दूसरा आदमी नहीं मिला। वह पूरे गृहस्थ थे, दूकानदारी भी करते थे और पंडित और विद्वान् होनेके नाते जगह-जगह व्याख्यान देते भी जाते थे और इस नाते आने-जानेका किराया और खर्च भी लेते थे, पर दूकानदारी और इन सब बातोंमें जितनी सचाई वे बरतते थे, और किसीको बरतते हुए नहीं देखा है। अगर उन्हें कोई ५० रु० पेशगी भेज दे और घर पहुँचते-पहुँचते उनके पास १० रु० बच रहें तो वह १० वापिस कर देते थे और दो पैसे बच रहें तो दो पैसे भी वापिस कर देते थे। वे हर तरहसे हिसाबके मामलेमें पैसे-पैसेका ठीक-ठीक हिसाब रखते थे। पाँचों व्रतोंमेंसे हर व्रतका पूरा-पूरा ध्यान रखते थे और इन व्रतोंके प्रति सचाई ही उनमें एक ऐसा जादू बनी हुई थी, जिससे सभी उनकी तरफ खिंचते थे।

धर्मके मामलेमें आमतौरसे लोग अणुव्रतोंमेंसे किसी व्रतकी परवाह नहीं करते और सचाईके अणुव्रतकी तो बिल्कुल ही परवाह नहीं करते। एक पंडितजी ही थे जो धर्म और व्यवहारमें कहीं भी सचाईको हाथसे नहीं खोते थे। तभी तो वह उन पंडितोंकी नजरमें गिर गये जो धर्मके ज्ञाता थे, पर उसपर अमल करनेके अभ्यासी नहीं थे।

पंडितजी अणुव्रती थे, पर साथ-ही-साथ परीक्षा प्रधानतामें पूरा विश्वास रखते थे और जैसे-जैसे वह परीक्षा प्रधानताको समझते जाते थे, वैसे-वैसे उसपर अमल करते जाते थे। दूसरे शब्दोंमें वह धीरे-धीरे परीक्षा प्रधानी बनते जा रहे थे कि मौत उन्हें उठाकर ले गई। कोई मनचला यह सवाल उठा सकता है कि क्या वह शुरू-शुरूमें परीक्षा प्रधानी नहीं थे? हम उसे जवाब देंगे—'हाँ, वह नहीं थे। वह शुरू-शुरूमें अन्ध श्रद्धानी थे, कोरे कट्टर दिगम्बरी थे। उनकी कट्टरता दिनोंदिन कम होती जा रही थी और अगर वह जीते रहते तो वह कट्टरता खत्म हो जाती और फिर वे दिगम्बरी न रहकर जैन बन जाते और अगर कुछ और उभर पाते तो सर्वधर्म समभावी होकर इस दुनियासे कूच करते।

हम ऊपरके पैरेमें बहुत बड़ी बात कह गये हैं, पर वह छोटे मुँह बड़ी बात नहीं है। हमने पंडितजीको बहुत पाससे देखा है। पंडितजी हमको बहुत प्यार करते थे और जब भी हम उनसे मिले, उन्होंने पूरी रात हमसे बिल्कुल जी खोलकर बातें कीं और हमारी बातें खुले दिलसे सुनीं। हमसे जब वह बात करते थे तो एकदम अभिन्न हो जाते थे। हम ये सब कहकर भी यह नहीं कहना चाहते कि उन्होंने हमसे कबूला कि वे कट्टर दिगम्बरी थे। इस तरह बेतुकी बात हम क्यों पूछने लगे और वे हमसे क्यों कहने लगे। हम तो ऊपरकी बात सिर्फ इसलिये लिख रहे हैं कि हमने उन्हें पाससे देखा है और उनका खुला हुआ दिल देखा है। बस उस नाते और सिर्फ उस नाते हम यह कहना चाहते हैं कि हम जो-कुछ ऊपर कह आये हैं, वो वह है कि जो हमने नतीजा निकाला है।

हमने यह नतीजा कैसे निकाला, यह बतानेसे पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि जो आदमी परीक्षा प्रधानी बनने जा रहा है वह किसी धर्म या पन्थका कितना ही कट्टर अनुयायी क्यों न हो, उस आदमीसे लाख दरजे अच्छा है, जो अन्धश्रद्धानी होते हुए सर्वधर्म समभावी होनेका दावा करता है। वह तो सर्वधर्म समभावीका नाटक खेलता है, या ढोंग रचता है। पंडितजीने क्यों किसी चीजका नाटक नहीं खेला, वे जब जो-कुछ थे, सच्चे जीसे थे और सचाई ही तो पूज्य है, वही तो धर्म है, वही तो अँधेरेसे उजालेकी तरफ ले जानेवाली चीज है और वह पंडितजीमें थी। इस सचाईके बलपर ही

वह झट ताड़ जाते थे कि मैं अबतक कौन-सा नाटक खेलता रहा हूँ और कौन-सा ढोंग रचता रहा हूँ। अपनी परीक्षामें जैसे ही उन्होंने नाटकको नाटक और ढोंगको ढोंग समझा कि उसे छोड़ा। जैसे ही उन्होंने परीक्षासे यह जाना कि सोमदेवकृत 'त्रिवर्णाचार' आर्ष ग्रन्थ नहीं हैं, वैसे ही उन्होंने उसको अलग किया और उसके आधारपर जो पूजाकी क्रियाएँ करते थे, उन्हें धता बताई। धता बताई शब्द जरा भी हम बढ़कर नहीं कह रहे हैं, उन्होंने इससे ज्यादा कड़ा शब्द इस्तेमाल किया था।

धर्मके मामलेमें उनकी कही हुई खरी-खरी बातें आज बच्चे-बच्चेकी जबान पर हैं, उन्हें हम दुहराना नहीं चाहते। हम तो यहाँ सिर्फ इतना ही कहेंगे कि पंडित गोपालदासजी बरैया सचाईके साथ विचारस्वाधीनताका दरवाजा खोल गये।

पंडितजीने सम्यक्त्व, देवता, कल्पवृक्ष, केवलज्ञान, मुक्ति इनके बारेमें ऐसी-ऐसी बातें कहीं, जिनसे एक मर्तबा समाजमें खलबली मची, पर वैसा तो होना ही था, कुछ दिनों पंडितजीकी हँसी उड़ाई गई, फिर जोरका विरोध किया गया फिर सहन किया गया और फिर मान लिया गया।

पंडितजीने क्या-क्या काम किये, इनको गिनाकर हम क्या करें, ये काम मुरेना महा विद्यालयका है। हम तो सिर्फ वो ही बातें लिखना चाहते है, जिनका हमारे दिल पर असर है। पंडितजीको जो संगिनी मिली थी, वह उन्हींके योग्य थी, उनकी संगिनी उनके अणुव्रतोकी परीक्षाकी कसौटी थी, पर पंडितजी उस कसौटी पर हमेशा सौटंच सोना ही साबित हुए। उनकी संगिनीके स्वभाव के बारेमें हमने सुना ही सुना है, पर वह सुना ऐसा नहीं है कि जिस पर विश्वास न किया जाय। हमारा देखा हुआ कुछ भी नहीं है कि कोई ये न समझे कि हम ऐसी बातें कहकर पूर्वापर विरोध कर रहे हैं। चूँकि अभी तो हम कह आये है कि हमने पंडितजीको पाससे देखा है और जब पाससे देखा है तो क्या संगिनीको नहीं देखा था, हाँ, देखा था पर हमने कभी उनको ऐसे रूपमें नहीं देखा, जैसा सुन रक्खा था, और इसके लिए तो हम एक घटना लिखे ही देते है।

इटावामें 'तत्व प्रकाशिनी सभा' का जलसा था। पंडितजी अपनी संगिनी समेत वहाँ आये हुए थे। उनकी संगिनी उस वक्त प्रेमीजीके लड़केको जो उस वक्त वर्ष या डेढ़ वर्षका होगा, गोदमे खिला रही थी। वह लड़का उनकी गोदमें बुरी तरह रो रहा था, हम उस वक्त तक उनको पंडितजीकी संगिनीकी हैसियतसे नही जानते थे। इसलिये हमने उनकी गोदसे उस लड़केको छीन लिया; और सचमुच छीन लिया, ले लिया नही। छीन लिया हम यों कह रहे है कि हमने उस बच्चेको लेते वक्त कहा तो कुछ नहीं पर लेनेके तरीकेसे ये बताया कि हम यह कह रहे हैं कि तुम्हें बच्चा खिलाना नही आता और होनहारकी बात कि वह बच्चा हमारी गोदमें आकर चुप हो गया। यह सब कुछ प्रेमीजी खड़े-खड़े देख रहे थे। वे थोडी देरमें चुपकेसे हमारे पास आकर बोले कि 'आप बड़े भाग्यशाली हैं।' मैंने पूछा क्यों ? बोले— 'आपने पंडितानीजीसे बच्चा छीन लिया और आपको एक शब्द भी सुननेको नहीं मिला। हम तो उस वक्त न जाने क्या क्या अंदाजा लगा रहे थे।'

उस दिनके बाद हम जब भी पंडितजीसे मिले, हमने तो उनको इसी स्वभावमें पाया। यही वजह है कि हम उनके स्वभावके बारेमें जो कुछ कह रहे हैं, वह सब सुनी सुनाई बात है।

कुछ भी सही, हाँ तो उनकी संगिनी उनके अणुव्रतकी कसौटी थीं और जीवनभर उनका साथ ऐसा निभाया कि जो एक अणुव्रती ही निभा सकता था।

पंडितजीने जीतेजी दूसरी प्रतिमासे आगे बढ़नेकी कोशिश नहीं की, लेकिन एकसे ज्यादा ब्रह्मचारियोंको हमने उनके पाँव छूते देखा, वह सचमुच इस योग्य थे।

आज जो तत्व-चर्चा घर-घरमें फैली हुई है और ऐसी बन गई है, मानो वह माँके पेटसे ही साथ आती हो, ये सब पंडितजीकी मेहनतका ही फल है। वे गहरीसे गहरी चर्चाको इतनी आसान बना देते थे कि एक बार तो तत्त्वोंका बिलकुल अजानकार भी ठीक-ठीक समझ जाता था, यह दूसरी बात है कि अपनी अजानकारीके कारण वह उसे ज्यादा देरके लिए याद न रख सके। इसलिये उन्होंने 'जैन सिद्धान्त-प्रवेशिका' नामकी एक किताब लिख डाली थी। उसे आप जैन सिद्धान्तका जेबीकोश यानी पाकेट डिक्शनरी कह सकते है।

# गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ

संक्षिप्त-परिचय

•

सम्पादक
सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री
पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ
पं० जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री
प्रो० दरबारीलाल कोठिया आचार्य
डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, डी० लिट

•

प्रकाशक
अ० भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद्

# दो शब्द

स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेशरी, न्यायवाचस्पति श्रीमान् पं० गोपालदासजी वरैयाके असीम उपकारोंसे जैन समाज अत्यन्त उपकृत है। जिस समय जैन समाजमें एक भी विद्यालय ऐसा न था, जो जैन सिद्धान्तके उच्चतम ग्रन्थोंके पठन-पाठनकी व्यवस्था कर भगवान् महावीर स्वामीको दिव्य देशनाका प्रसार कर रहा हो, उस समय स्वान्तःकरणकी प्रबल प्रेरणासे वरैयाजीने किसी गुरुकी सहायताके बिना ही स्वाध्याय द्वारा अपने ज्ञानको इतना वृद्धिगत कर लिया था कि वे विद्वत्परम्पराके स्वयंबुद्ध गुरु हो गये। वे अप्रतिम प्रतिभा और अपरिमित वाक्कौशलके धनी थे। उन्होंने उच्च-कोटिके धर्मग्रन्थोंके पठन-पाठनका प्रारम्भकर जैनसिद्धान्तके ज्ञाता वर्तमान विद्वानोंकी पीढ़ीको जन्म दिया। आपकी शिष्यपरम्परामें आज ऐसे विद्वान् हैं जो उच्चकोटिके साहित्य-निर्माता, व्याख्याकार, कुशल वक्ता एवं सुलेखक माने जाते हैं। अपना व्यापारिक कार्य करते हुए आपने निःस्वार्थभावसे स्थान-स्थानपर जाकर जैन सिद्धान्तोंका लोगोंको परिज्ञान कराया था तथा जैनधर्मकी प्रभावना की थी।

इस लोकोत्तर विभूतिके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्त्तव्य समझकर भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्ने अपने सिवनी अधिवेशनमें एक प्रस्ताव द्वारा उनका शताब्दी-समारोह मनाने और श्री गोपालदास वरैया, स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करनेकी योजना प्रस्तुत की और उसके लिए एक उपसमितिका गठन किया। प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि समाजने इस योजनाको क्रियान्वित करनेमें अच्छी अभिरुचि दिखलाई। फलतः स्मृतिग्रन्थका प्रकाशन हुआ है। इस ग्रन्थमें पूज्य वरैयाजीसे सम्बद्ध जैन समाजका सौ वर्षका इतिहास, उनके साहित्यका परिचय तथा लेखों आदिका संकलन तो है ही, उसके साथ, धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास तथा पुरातत्व आदि विषयों पर उच्चकोटिके लेखकोंके द्वारा लिखित श्रेष्ठ लेखोंका संकलन भी है। इस ग्रन्थके सम्पादनमें श्रीमान् सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, प्रधानाचार्य स्याद्वाद-महाविद्यालय वाराणसी, डा० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट् संस्कृत-प्राकृत विभागाध्यक्ष हरप्रसाद दास जैन कालेज आरा तथा प्रो० दरबारीलालजी कोठिया, न्यायाचार्य, प्राध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसीने पर्याप्त श्रम किया है तथा उपसमितिके अन्य विद्वानोंने भी यथाशक्य सहकार दिया है। विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणी इन विद्वानोंके प्रति नम्र आभार प्रदर्शित करती है। जिन विद्वानोंने अपने लेख तथा श्रद्धाञ्जलियाँ भेजकर ग्रन्थकी गरिमा बढ़ाई है और जिन विद्वानों तथा धीमानोंने औदार्यपूर्ण आर्थिक सहयोग देकर इसकी प्रकाशन-व्यवस्थाको सुकर बनाया है उन सबके प्रति विद्वत् परिषद्की कार्यकारिणी हार्दिक आभार प्रकट करती है।

स्मृति-ग्रन्थ सिर्फ ८०० छपाये गये हैं। आर्थिक सहयोग कर्ताओं, लेखकों तथा सम्माननीय व्यक्तियोंको समर्पित करनेके बाद शेष ग्रन्थोंकी बिक्रीसे जो द्रव्य वापिस आवेगा उसे वरैया स्मारक-निधिमें जमा किया जावेगा और उसकी आयसे कार्यकारिणीकी आज्ञानुसार साहित्य-प्रकाशन आदि कार्य सम्पन्न किये जावेंगे।

सागर<br>
चैत्र कृष्णा १२, वि० सं० २०२३<br>
वी० नि० २४९४

विनीत<br>
पन्नालाल साहित्याचार्य<br>
मंत्री<br>
भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्<br>
( कार्यालय-वर्णीभवन, सागर )

# गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ की विषय-सूची

## प्रथम खण्ड

### जीवन परिचय



### संस्मरण



### श्रद्धाञ्जलियाँ

# द्वितीय खण्ड

## प्रवृत्तियाँ



## विचार



## निबन्ध



## रचनाओंका अनुशीलन

# तृतीय खण्ड

## धर्म और दर्शन



# चतुर्थ खण्ड

## साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति

# गुरुदक्षिणा-निधि के लिए प्राप्त सहायता

१००१) पंच कल्याणक समिति सिवनी
१०००) साहू शीतलप्रसाद जी कलकत्ता मार्फत देवेन्द्रकुमार ट्रस्ट कलकत्ता
१०००) सेठ मिश्रीलाल धर्मचन्दजी काला कलकत्ता
५५१) केन्द्रीय समिति दिल्ली मार्फत क्षुल्लक पूर्णसागरजी
५०१) दानवीर सेठ भगवानदास शोभालालजी सागर
५०१) दानवीर सेठ भागचन्दजी डोंगरगढ़
५०१) सेठ बालचन्द देवचन्द्रजी शाह सोलापुर
५०१) पण्डित माणिकचन्दजी चवरे कारंजा
५०१) पंडित गुलाबचन्दजी एम० ए० दर्शनाचार्य जबलपुर
५०१) सेठ राजकुमारसिंहजी इंदौर
३००) बाबू छोटेलालजी कलकत्ता
२५१) श्रीमान् इन्द्रचन्द विजयकुमारजी कौशल छिंदवाड़ा
२५१) श्री बी० आर० सी० जैन कलकत्ता
२५१) श्री पंडित कैलाशचन्दजी शास्त्री वाराणसी
२५१) श्री रायबहादुर सेठ हुकमचन्दजी रांची
२५१) सिंघई धन्यकुमारजी रईस कटनी
२५१) श्री जुगमन्दरदासजी कलकत्ता
२०१) श्री पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना
२०१) श्री दिगम्बर जैन समाज जबलपुर
२०१) श्री पंडित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री वाराणसी
२०१) श्री पं० खुशालचन्दजी साहित्याचार्य वाराणसी
२०१) श्री सेठ जगन्नाथजी पाण्ड्या कोडरमा
२००) श्रीमती सरस्वतीबाईजी धर्मपत्नी सवाई सिंघई पन्नालालजी नागौद
१८१) श्री दिगम्बर जैन समाज इटारसी
१५१) श्री डा० नेमीचन्दजी ज्योतिषाचार्य आरा
१५१) श्री पं० अमृतलालजी दर्शनाचार्य वाराणसी
१५१) सवाई सिंघई दरबारीलाल घासीरामजी सतना
१५१) श्री दि० जैन समाज मिर्जापुर (बंगाल)
१५१) श्री पं० उदयचंदजी एम० ए० वाराणसी
१५१) सवाई सिंघई दरबारीलाल घासीरामजी सतना
१५१) श्री दि० जैन समाज मिर्जापुर (बंगाल)
१५१) श्री पं० उदयचंदजी एम० ए० वाराणसी
१५०) श्री दिगम्बरजैन समाज गया
१०१) श्री पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर
१०१) श्री मोतीलालजी बनगांव
१०१) लाला कपूरचन्द धूपचन्दजी कानपुर
१०१) श्री मत्थालालजी 'नीरज' सतना
१०१) पंडित बालचन्दजी काव्यतीर्थ नवापाराराजिम
१०१) श्री हरनामदास प्रेमचन्दजी सतना
१०१) श्री स्वरूपचन्द हेमचन्दजी सतना
१०१) श्री माणिकलाल कन्हैयालालजी सतना
१०१) श्री फूलचन्द सुरेशचन्दजी सतना
१०१) श्री केवलचन्द कैलाशचन्दजी सतना
१०१) श्री पंडित दरबारीलालजी कोठिया वाराणसी
१०१) पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय सागर
१०१) पंडित दयाचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री सागर
१०१) श्री पंडित वंशीधरजी शास्त्री न्यायालंकार इंदौर
१०१) पंडित हीरालालजी कौशल दिल्ली
१०१) श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्दजी विदिशा
१०१) कपूरचंदजी वरैया एम० ए० कसेरा ओली लश्कर
१०१) श्री मूलचंदजी कापड़िया सूरत
१०१) श्री पन्नालालजी शास्त्री (बमोरेलाल पन्नालालजी किराना व्यापारी) अकलतरा
१०१) श्री बालचन्दजी मलैया सागर
१०१) श्री लाला राजकृष्ण चेरिटेबुल ट्रस्ट दिल्ली
१०१) सुमतिबाईजी शहा श्राविकाश्रम सोलापुर
१०१) श्री चन्दूलाल कस्तूरचंद चेरिटेबुलट्रस्ट बंबई
१०१) श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मंदिर गुलालवाड़ी बंबई
१०१) श्री ब्र० हीरालालजी पाटनी निवाई
१०१) श्री पंडित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ जयपुर
१०१) श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तार
१०१) श्री लाला नन्दकिशोर नेमिचन्दजी डेहरी ओन सोन
१०१) श्री चेतनलालजी जैन साहुपुरी (वाराणसी)
१०१) श्री गजाननजी पाटनी गया (बकाया)
१०१) बाबू रतनलालजी वकील बिजनौर
१००) श्रीमती मेनाबाईजी नागौद
१००) ,, मालतीदेवी ध०प० लाला देवेन्द्रकुमारजी देहली
६५) श्री सकल दिगम्बर जैन समाज जंगीपुर
५१) गुप्तदान मारफत मा० दशरथलालजी सिवनी
५१) गुप्तदान मार्फत भगवानदासजी काव्यतीर्थ रायपुर
५१) श्री पंडित दामोदरदासजी सागर
५१) गुप्तदान खातेगांव
५१) पंडित धरणेन्द्रकुमारजी हटा
५१) श्री चांदमल ताराचन्दजी धूलियान
५१) महिला समाज धूलियान
५१) श्रीमती मन्नीदेवीजी लालगोला
५१) श्री भँवरलाल चाँदमलजी कलकत्ता
५१) श्री जयकुमार प्रेमचन्द्रजी इटौरिया दमोह

५१) श्री मूलचन्द भागचन्दजी इटौरिया दमोह
५१) श्री वैद्य कुन्दनलालजी सतना
५१) श्री फूलचन्दजी देवेन्द्रनगरवाले सतना
५१) श्री ब्रह्म० हरिश्चन्दजी हस्तिनापुर
५१) श्री विनयकुमारजी चौरासी मथुरा
५१) श्रीमती यशोदाबाई धर्मपत्नी सुखानन्दजी रांची
५१) श्री पंडित माणिकचन्द्रजी न्याय-काव्यतीर्थ सागर
५१) श्री महेशचन्दजी एम० ए० श्री० दि० जैन मन्दिर हस्तिनापुर (मेरठ)
५१) लाला जयन्तीप्रसाद एण्ड संस सराफ मेरठ
५१) पंडित बालचन्दजी शास्त्री दिल्ली
५१) पंडित जमनाप्रसादजी पनागर
५१) श्री भागचन्द सुरेन्द्रकुमारजी आड़ती खतौली
५१) पंडित नन्हेलालजी शास्त्री सिद्धान्तरत्न राजाखेड़ा
५१) पंडित शीलचन्दजी जैन न्यायतीर्थ मवानामंडी
५१) श्री दिगम्बर जैन मंदिर उदासीनाश्रम ईसरी
५१) पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ ललितपुर
५१) पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी
५१) पंडित श्यामलालजी ललितपुर
५१) पंडिता रामाबाईजी जैन बालिका शिक्षासदन रांची
५०) पं० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य फिरोजाबाद (आगरा)
५०) ब्रह्म० जयचन्दजी साव क्षेत्रपाल ललितपुर
३१) श्री रामसहाय मदनलालजी धूलियान
३१) श्री पंडित धरमचन्दजी शाहपुर
३१) हरिश्चन्दजी टकसाली सूरजमल राजकिसनजी सराफ बड़ी चौपड़ जयपुर
३१) श्री सिंघई बदलीदास छोटेलालजी सासनी बुजुर्ग
३१) सिंघई हजारीलाल शिखरचन्दजी अमरपाटन(सतना)
२६) पंडित दयाचन्दजी साहित्याचार्य सागर
२५) पंडित धरमचन्दजी शास्त्री सागर
२५) श्री फूलचन्द हीराचन्दजी शाह वर्धमान प्रेस सोलापुर
२५) पं० भुवनेन्द्रकुमारजी शास्त्री बांदरी
२५) श्री कुंजीलाल दरबारीलालजी छिंदवाड़ा
२५) श्री कैलाशचन्दजी वरैया कुर्रीचित्तपुर आगरा
२५) श्री भागचन्द दयाचन्दजी गोंदिया
२१) श्री दि० जैन समाज छपारा
२१) श्री धन्नालाल मोहनलालजी धूलियान
२१) श्री दि० जैन महिला समाज जियागंज
२१) श्री धरमचन्द तोलारामजी कलकत्ता
२१) श्री पुखराज शोभनमल्लजी कलकत्ता
२१) श्री मुन्नीलाल हुकुमचन्द्रजी सतना
२१) पं० वीरेन्द्रकुमारजी गुना
२१) श्री कंछेदीलालजी एम० ए० साहित्याचार्य रायपुर
२१) पंडित अमृतलालजी शास्त्री दमोह
२१) बा० सुगुनचन्दजी सेठी हजारीबाग
२१) बद्रीप्रसादजी अध्यक्ष श्रीपार्श्वनाथ विद्यालय शिवपुरी
२१) श्री उदयचन्द मानचन्दजी विरदावन पाड़वा-डूंगरपुर
२१) श्री अमोलचन्द इन्द्रकुमारजी निधोलीकला एटा
२१) श्री बाबूलालजी भट्ट कानूनगो खुरई
२१) श्री रविचन्दजी प्रभात वर्तन भंडार दमोह
२१) श्री जे० डी० जैन एडवोकेट सराफा सागर
२१) सिंघई लखमीचन्दजी जैतहरी
२१) श्री लक्ष्मीचन्दजी सरोज एम० ए० जावरा
२१) पंडित शिवमुखरायजी शास्त्री मारौठ (राज०)
२१) श्री पं० जम्बूप्रसादजी शास्त्री मडावरा (झांसी)
२१) श्री भुवनेन्द्रकुमारजी 'विश्व' जबलपुर
२१) सिंघई नृपेन्द्रकुमारजी महात्मागांधी रोड कलकत्ता
२१) पंडित भागचन्दजी आयुर्वेदरत्न पथरिया
२१) पंडित रसिकलालजी वैद्य कुरावली ( मैनपुरी )
२१) श्री श्यामलालजी पाण्डवीय मुरार
२१) श्री दिगम्बर जैन महिला समाज पुरुलिया
२१) सिंघई छोटेलालजी, सिंघई वस्तु भंडार गाडरवारा
२१) पंडित कुंजीलालजी शास्त्री जैन विद्यालय गिरीडीह
२१) पंडित छोटेलालजी वरैया साहित्यभवन उज्जैन
२१) श्री दि० जैन समाज नवापारासजिम
२१) श्री ऋषभचन्दजी जैन जाजपुररोड ( कटक )
२१) पंडित सगुनचन्दजी शास्त्री राजाखेड़ा ( धौलपुर )
२१) पंडित मोतीलालजी वैद्य आयुर्वेदाचार्य ग्वानेगांव
२१) लाला बाबूलाल राजेन्द्रकुमारजी खतौली
२१) श्री कपिलभाई टी० टोकड़िया दि० जैन समाज हि०नगर
२१) श्री १००८ पार्श्वनाथ दि० जैन मंदिर सेठ जगन्नाथप्रसाद रतनचंद गोनावाले मडावरा
२१) श्री वैद्य अभयचन्दजी जैनदर्शनाचार्य समन्तभद्र विद्यालय दरियागंज देहली
२४६) फुटकर सहायता

●

मुद्रक : बाबूलाल जैन, फागुल्ल महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-१

# गुरुजीका शिष्य परिवार

●

पं० माणिकचन्द्रजी कौन्देय

## गुरुजी के मित्र एवं सहयोगी

स्व० पं० धन्नालालजी जैन
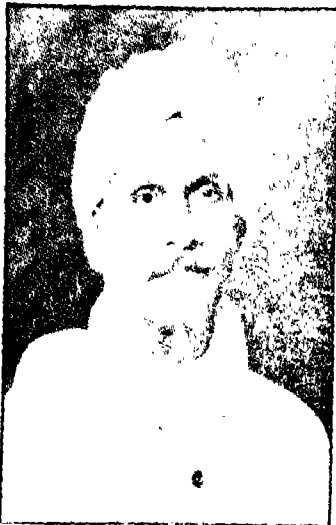
स्व० पं० वंशीधरजी शास्त्री, सोलापुर
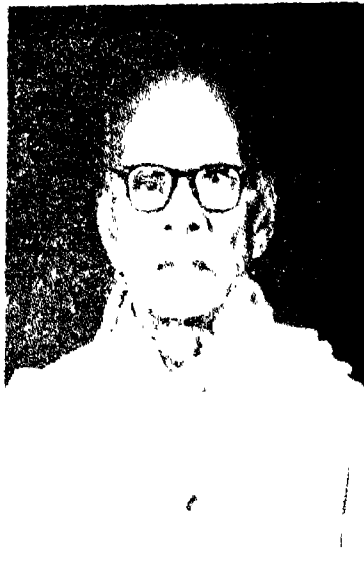
पं० वंशीधरजी न्यायालंकार

स्व० ब्र० ज्ञानानन्दजी
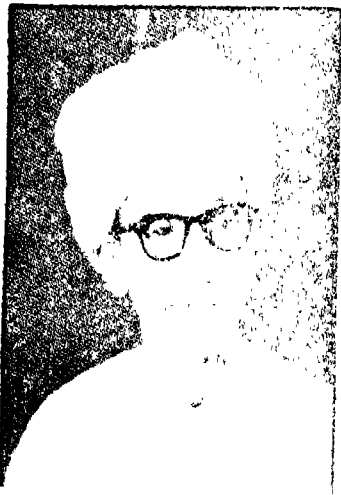
पंडितजीकी जीवनीसे जो कुछ सीख ली जा सकती है, उसका निचोड़ हम यह समझे हैं—

१. सच्चे या अणुव्रती बनना है तो निर्भीक बनो।

२. निर्भीक बनना है तो किसीकी नौकरी मत करो, अपना कोई रोजगार करो।

३. रोजगार करते हुए अगर धर्म या धर्मचर्चाके वक्ता बनना चाहते हों तो अणुव्रतका ठीक-ठीक पालन करो, तभी दुकान चल सकती है।

४. अणुव्रतोंको अगर ठीक-ठीक पालन करना है तो अपनी हद बाँधो।

५. अपनी हद बाँधनी है तो किसी कर्तव्यसे बाँधो।

६. कर्त्तव्यको ही अधिकार मानो।

७. अधिकारी बनो, अधिकारके लिए मत रोओ।

'मेरे साथी' भारत जैन महामण्डल, फरवरी १९५०

●

# ज्ञाननिधि गुरुदेव

सिद्धान्त महोदधि पं० माणिकचन्द कौन्देय, न्यायाचार्य

हनुमानगंज, फिरोजाबाद

●

प्रातः स्मरणीय, स्याद्वादवारिधि, न्यायवाचस्पति, स्व० पूज्य गुरु पं० श्री गोपालदासजी वरैया इस शताब्दिमें एक धुरन्धर विद्वान् हो गये हैं। वि० सं० १९५४में चौरासी मथुरामें खुले दिगम्बर जैन महाविद्यालयके वे मंत्री रहे। जब उसमें अंग्रेजी, गणित, आदि विषय भी पढ़ाये जाने लगे तो पंडितजीको मंत्रिकार्यसे अरुचि हो गई। गुरुजीका लक्ष्य जैन प्रकाण्ड आचार्योंके बनाये गये ग्रन्थोंके ही अध्ययन अध्यापनकी ओर था। ये अंग्रेजी आदि तो अन्य स्कूलोंमें भी साधारणरीत्या पढ़ाये जा रहे हैं, फिर जैन महाविद्यालय स्थापनाका क्या उद्देश्य रहा? प्रकृष्ट तपस्याको गौणकर श्री समन्तभद्र, अकलंक देव, विद्यानन्द, नेमिचन्द्र प्रभृति आचार्योंने जो गोम्मटसार आदि महान ग्रन्थ बनाये हैं उनका पठन-पाठन होना चाहिये। जैन ग्रन्थों और जैनधर्मके प्रचारकी भारी धुन उनको लगी थी। तदनुसार कुछ वर्षों पश्चात् वि० सं० १९६७ में गुरुजीने मोरेनामें जैन सिद्धान्त विद्यालय खोल उसमें मुझे न्यायकी गद्दी पर नियुक्त किया। उस समय उमरावसिंहजी, देवकीनन्दनजी, बंशीधरजी, खूबचन्दजी आदि छात्र और मैं स्वयं गोम्मटसार, त्रिलोकसार, पंचाध्यायी आदि ग्रन्थोंको गुरुजीसे पढ़ते थे तथा उक्त छात्र सोत्साह प्रमेयकमलमार्तंड, अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक आदि न्यायग्रन्थोंको मुझसे पढ़ते थे।

गुरुजी गोम्मटसार, त्रिलोकसार, पंचाध्यायीके अंतस्तलस्पर्शी विद्वान् थे। इन ग्रन्थोंको उन्होंने कई बार पढ़ाया। मैंने भी गुरुमुखसे उक्त ग्रन्थ पढ़े। अन्य भी अनेक चर्चाएँ कर तत्त्वबोध प्राप्त किया। मैं उनके अविस्मरणीय उपकारोंसे आनखसिख अत्यन्त आभारी हूँ। उनको अपना सद्गुरु मानता हूँ। वे भी मुझसे प्रिय शिष्यवत् अखण्ड स्नेह रखते थे।

श्री त्रिलोकसारमें ऊर्ध्वलोककी आकार रचना पिनष्टि (पीनस) बताई गई है जो कि किसी पंडितसे नहीं लगी थी। आचार्यदेशीय पं० टोडरमलजीने लिख दिया था कि यह मेरी समझमें नीके नहीं बैठ रही। किन्तु दो घंटे श्रमकर गुरुजीने उस रचनाको सुस्पष्टतया हम लोगोंको समझा दिया। वे रेखागणित, बीजगणित और अंकगणितके मर्मस्पर्शी विद्वान् थे। पंडितजी उत्कट सम्पादक थे, उद्भट पुस्तक लेखक भी थे। उन्होंने जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, जैन सिद्धान्त दर्पण और सुशीला उपन्यासकी रचना की थी। कुछ गीत भी बनाये थे।

गुरूजीकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किये। बीमार अवस्थामें भी शास्त्रार्थके लिये बाहर गये। अनेक शास्त्रार्थ जीते। कलकत्ता, देहली, अजमेर, अटेर आदि अनेक स्थानोंपर वे मुझे भी साथ ले गये थे। उन्होंने अजमेरमें दर्शनानन्द सरस्वतीको परास्त किया। कलकत्तामें सहस्त्रशः अजैन विद्वानोंमें जैन सिद्धान्तका ठोस व्याख्यान देकर 'न्यायवाचस्पति'की उपाधि प्राप्त की।

एक बार पंडितजी ज्वराक्रान्त थे किन्तु बाहर शास्त्रार्थके लिये जाना आवश्यक था। पंडितजीने उस अवस्थामें ही प्रस्थान कर दिया और हार्दिक प्रभावनोत्साहके अनुसार जय प्राप्त की। इसी प्रकार एक बार पंडितजी प्रभावनार्थ बाहर जानेको उत्सुक थे किन्तु पंडितानीजीने निषेध किया, कपड़े, लोटा आदि नहीं लेने दिये। वे अकेले शरीरपर कुर्ता पहिने ही बाहर चले गये और वहाँ स्वकीय व्ययसे कपड़े बनवाये। पंडितजीकी लगन और धुनके ये कतिपत उदाहरण हैं। वे पक्के सत्यव्रती और निःस्पृह थे। समाजसे कोई भेंट नहीं लेते थे।

गुरुजीके तलस्पर्शी पांडित्यका क्या कहना! न्याय, काव्य, व्याकरणकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। राजवार्तिक, श्लोकवार्तिककी कठिन पंक्तियोंके सम्मुख आ जानेपर हम संदिग्ध रहते थे कि देखें ये इन दार्शनिक पंक्तियोंको दार्शनिक संकेतोंको जाने बिना कैसे लगावेंगे? किन्तु दूसरे मिनटमें ही हम आनन्द-विभोर हो जाते थे, जबकि वे उन राक्षसी स्वरूप पंक्तियोंके अन्तस्तलीय अभिप्रायको सम्मुख रख देते थे। हमें भारी आश्चर्य उपजता था। उनका अनुभव दार्शनिक आचार्योंसे मिल जाता था 'उपर्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वर बुद्धयः।'

गुरूजी जैनधर्मके बड़े प्रचारक थे। कई जैन विद्यालयोंमें अजैन ग्रन्थ भी पढ़ाये जाते थे। इस प्रकरणको लेकर उन्होंने लेख लिखकर समाजको प्रबोधित किया। तब सभी जैन विद्यालयोंमें जैनग्रन्थोंमें भी वार्षिक परीक्षा देना अनिवार्य कर दिया गया। उनका निर्णय था कि जैनाचार्योंने भी व्याकरण, न्याय, काव्य सिद्धान्तके उच्चकोटिके ग्रन्थ बनाये हैं। अतः जैनवाङ्मयका ही अध्ययन क्यों न किया जाय? अजैन ग्रन्थ तो अन्यत्र भी पढ़ाये जा सकते हैं।

यों ठोस विद्वान् गुरुजीने जिनागमोंका प्रचार करते हुए अनेक जैनग्रन्थोंकी उलझी हुई गुत्थियोंको सुलझाया। यज्ञोपवीत आदि क्रिया-कलापका भी प्रचार किया। सिद्धान्त ग्रन्थोंका प्रचार जो वर्तमानमें दीखता है उसमें गुरुजीका प्रधान हाथ था। उनके गुणोंका वर्णन लेखनी-कला-क्रियाके बाह्य हैं। वे गृहस्थ होकर होकर साधु जीवन व्यतीत करते थे। उनके सदृश उद्भट विद्वान्की स्थानपूर्ति होना नितान्त कठिन है। मैं ऐसे पुनीतात्मा गुरुजीके चरणोंमें शतशः श्रद्धांजलियाँ अर्पित करता हूँ।

# अविस्मरणीय मेरे विद्यागुरु

न्यायालंकार पं० बंशीधर जी शास्त्री, इन्दौर

●

बात उस समयकी है जब मेरी उम्र १२॥ वर्षकी थी, तब प्राथमिक शिक्षणके बाद हमारे पिताने हमें हजारीलालजीके साथ समीपस्थ स्थान बरुवासागर भेजा। वहाँ सेठ श्री मूलचन्द्रजी प्रसिद्ध धर्मनिष्ठ और शिक्षा प्रेमी थे। हम दोनोंको होनहार समझकर उन्होंने वीर सं० २४३२ विक्रमांक १९६१ में वाराणसी ( बनारस ) भेज दिया। वहाँ आकर मैदागिनकी धर्मशालामें आश्रय मिला।

वहाँ ठाकुरदासजी भगत उस समय रहते थे, उनकी भाभी साथ थीं जो अत्यन्त धर्मनिष्ठ थीं। मुझे भी उनका धर्मस्नेह प्राप्त हो गया। श्री स्वर्गीय पं० पन्नालालजी बाकलीवाल भी उस समय वहीं पर थे। हम और हजारीलाल दो छात्र जिस समय विद्यालाभके लिये पहुँचे थे, पूज्य पं० गणेशप्रसादजीके सत्प्रयत्नोंसे उस समय काशीमें विद्यालयकी संस्थापनाका निश्चित विचार हो चुका था।

## काशी विद्यालयकी स्थापना

ज्येष्ठ शुक्ला ५ ( श्रुत पचंमी ) के पवित्र दिन मैदागिनमें ही 'स्याद्वाद जैन महाविद्यालय' की स्थापना हुई। स्थापनाके समय श्री बाबू अजितप्रसादजी, बाबू जुगमन्दिरदासजी, सेठ माणिकचन्दजी मुंबई और ब्र० शीतलप्रसादजी पधारे थे। श्रीमान् स्व० पं० अम्बादासजी शास्त्री अध्यापकके रूपमें हमें प्राप्त हुए और उन्होंने हम दोनों छात्रोंको लेकर विद्यालयका मुहूर्त किया। दो दिन बाद हम सब भदैनी आ गये। कुँवरसेन शर्मा नामक एक रसोईदार रखा गया। ५ वर्ष तक हमारी शिक्षा चलती रही। प्रथमा, न्याय मध्यमा दूसरा खंड पास किया। जैन न्यायमें आप्तपरीक्षा, धर्ममें सर्वार्थसिद्धिका अध्ययन किया। विक्रमांक १९६५ में सर्वार्थसिद्धिकी परीक्षा दी। हमारे परीक्षक थे माननीय स्व० पं० गोपालदासजी वरैया। हमारी कापी जाँचकर उन्होंने ६९ नम्बर दिये। इस परीक्ष सम्बन्धने ही हमें पंडितजीके विशाल हृदयके एक कोनेमें स्थान दे दिया।

## शिखरजीमें पंच कल्याणक

सं० १९६६ में सिवनीके प्रसिद्ध धर्मात्मा श्रीमन्त सेठ पूरणसाहजीकी ओरसे परम पवित्र धाम श्री सम्मेदसिखरजी पर भगवानके पंचकल्याणक तथा गजरथ महोत्सवका आयोजन था। लाखों जैन बन्धु समस्त भारतसे एकत्रित हुए थे। गजरथके साथ पंचकल्याणक महोत्सव बुन्देलखण्डकी विशेष प्रतिष्ठित प्रथा है, फिर इस पवित्र क्षेत्र पर तो उसका महत्त्व सौगुना था। आगत समस्त बंधुओंका ३ दिन भोजन पानका ( जेवनार ) प्रबंध सेठ पूरणशाहजीकी ओरसे था। हमें भी अपनी १८ वर्षकी उम्रमें उस पवित्र धर्मोत्सवका शुभ अवसर प्राप्त हुआ। मैदागिनसे जब चलनेवाले थे तब वहाँ गुरुवर पं० गोपालदासजी भी सिखरजी यात्राके प्रसंगसे आ गये थे। गुरूजीसे साक्षात् परिचयका मुझे प्रथम सुअवसर प्राप्त हुआ। यह दिवस मेरा सौभाग्य दिन था। इस समय एक छात्र श्री उदयलालजी काशलीवाल भी हमारे साथ थे। इन्हें अपनी विद्याका कुछ ऐसा अभिमान था कि वह अपने को सबसे समझदार और विद्वान् मानता था।

## एक प्रश्न

उदयलालजी गुरु गोपालदासजीसे मिले। उन्होंने गुरुजीसे प्रश्न किया कि पंडितजी! किसीने आलू छोड़ दिए हैं पर अचित्त दशामें यदि खाय तो कोई हानि तो नहीं है। गुरुजीने उसे समझाया कि भाई, अनन्तकायका घात तो उसमें होगा। इसीसे वे अभक्ष्य हैं, और फिर जिसने जो वस्तु छोड़ दी हो वह पवित्र भी हो तो वह उसे कैसे खायगा, यह प्रश्न तो गलत है। उदयलालजी चुप हो गये। दूसरे दिन पुन: गुरुजीके पास जाकर उनसे नैगमसंग्रहादि सूत्रकी टीका सर्वार्थसिद्धिमेंसे समझनेकी प्रार्थना की। गुरुजीने मेरी सर्वार्थसिद्धिकी कापी जाँची थी, अत: उन्हें मुझपर विश्वास था कि

यह बालक ठीक-ठीक समझता है। तब उन्होंने मुझसे कहा कि भाई, अपने साथी को उक्त सूत्रकी टीका समझा दो। उदयलालजी यह सुनकर कुछ लज्जितसे हुए और जो एक मिथ्या अहंकार छात्रावस्थामें आ गया था वह दूर हुआ।

## मेरी उद्धतता

उसी दिन सन्ध्या समयमें गुरुजीसे मिलने मैंदागिन गया। गुरुजीने मुझसे प्रश्न किया कि क्यों, बंशीधर, 'जैनधर्म पढ़ना चाहते हो।' छात्रावस्थामें अल्हणपना तथा कुछ मिथ्या अहंकार मुझे भी था। मैंने उत्तर दिया कि 'गुरुजी जब बुड्ढे होंगे तब धर्मशास्त्र पढ़ लेंगे। गुरुजी हँसे और बोले कि बच्चे, धर्मशास्त्रका पढ़ना हँसी-खेल नहीं है, बड़ा गम्भीर विषय है। जब पढ़ोगे तब मालूम होगा। मैं चुप रह गया।

## शिखरजीमें गुरुजीका स्नेह

यथासमय सब लोग शिखरजी पहुँचे। हम भी गये। सभाएँ भरतीं थीं। अनेक विद्वानोंके भाषण होते थे। मेरे अन्तःकरणमें भी प्रेरणा हुई और मैंने भी एक भाषण संस्कृत भाषामें तैयार किया तथा समय लेकर सभामें व्याख्यान दिया। श्री ब्र० दरियावसिंहजी सोधियाने मुझे हर्षसे गोदमें उठा लिया। सर सेठ हुकुमचन्दजी भी प्रसन्न हुए और गुरुवर्य पं० गोपालदासजीने मुझे स्नेहदृष्टिसे देखा।

## नियम पालनका दृढ़ संकल्प

मेलेकी समाप्ति थी, लोग अपने-अपने घर वापिस हो रहे थे। इसरी स्टेशनपर बड़ी भीड़ थी। मुसाफिरखानेमें गुरुजी भी थे और हम भी। गाड़ी आनेका समय हो रहा था। सभी मुसाफिर प्लेटफार्मपर जानेको उत्सुक थे। फाटक खुला नहीं था, अतः मुसाफिर लोग तार लाँघ-लाँघ कर प्लेटफार्म पर पहुँचने लगे।

मैंने गुरुजी से कहा कि चलिए, प्लेटफार्म पर चलें, भीड़ बहुत है, नहीं तो पीछे रह जायेंगे। गुरुजी बोले कि भाई! फाटक नहीं खुला है, नियम-विरुद्ध कार्य नहीं करना चाहिये। रेलवे अधिकारी यथासमय फाटक खोल देते हैं और तब ही जाना नियमानुकूल सही है। इस तरह लाँघकर जाना उचित नहीं। थोड़ी देरमें फाटक खुला और गुरुजीके साथ हमलोग फाटकसे निकलकर प्लेटफार्मपर आये, गाड़ी भी आगई और कठिनाईसे हम सब चढ़ पाये। नियमोंके यथाविधि पालनकी दृढ़ताका पाठ उसी दिन मैंने गुरुजीसे सीखा। अनेक अनियमितताएँ जीवनसे दूर हो गईं। यह मेरा उनके पास प्रथम पाठ था।

गुरुजी आगरा वापिस चले गए और हम बनारसमें अध्ययन करने लगे। पर धर्मशास्त्र पढ़नेकी बात मनमें घर कर गई थी। गुरुवर पंडित गोपालदासजीके प्रति श्रद्धा ऊँची हो गई थी, ऐसा लगता था कि यहाँसे भाग जांय और उनके चरणसान्निध्यमें कुछ धर्मका मर्म समझ लें।

## गुरुजीके पास पढ़नेकी तैयारी

बनारसमें अध्ययनके समय पर जो गुरु गोपालदासजी का परिचय मुझे प्राप्त हुआ, उस क्षणिक परिचयने ही मेरे हृदयमें बहुत बड़ा स्थान ग्रहण कर लिया। मुझे यह अनुभव होने लगा कि बिना इनके पासकी विद्या सीखे ज्ञान अधूरा है। श्री उमरावसिंहजीसे हमने इस सम्बन्धमें चर्चाकी और दोनोंने यह स्थिर किया कि गुरु गोपालदासजीके पास अवश्य पढ़ना है। एक समय अपने उक्त विचारोंसे प्रेरित होकर हम चल पड़े। सुना कि गुरुजी भिन्डमें है। बनारससे चलकर इलाहाबाद आए, यहाँ बुखार आ गया अतः ८ दिन रुकना पड़ा। सुपरिटेन्डेन्ट ऋषभचन्दजी साथ थे, उनने मेरी बहुत सेवा परिचर्या की। ८ दिन बाद बुखार ठीक हुआ, तभी उमरावसिंहजी भी आ गए। दोनों मिलकर भिण्ड गए।

## गुरुजीकी खोज

नया स्थान था। स्टेशनसे ताँगा पर चले। ताँगावालेने पूछा कहाँ जाओगे? उत्तर न सूझा कि क्या कहे! उसने बाजारमें लेजाकर एक दूकानके सामने ताँगा खड़ा कर दिया। हमने भी सामान उतार लिया और सामनेवाली दूकानपर रख दिया। दूकानदारने भी हमें आश्रय दिया। भोजनादिकी व्यवस्था की, तदुपरान्त क्रमशः परस्पर परिचयसे उन्हें ज्ञात हुआ कि हम दोनों विद्यार्थी हैं और गुरुजीके पास पढ़ने आये हैं। साथ ही हमें भी यह ज्ञात हुआ कि यद्यपि हम भूले-भटके थे पर स्थानपर ही भाग्यवश अनायास पहुँच गए, क्योंकि जिन सज्जनने हमें आश्रय दिया था वे उस समय उस

पाठशालाके मन्त्री थे। किन्तु दुर्भाग्यसे गुरुजी उस समय वहाँ नहीं थे, शायद आगरा गये थे। बड़ा सस्ता समय था, एक आना सेर बढ़िया दूध मिलता था। हमलोग पाठशाला पहुँचे, रसोई बनाते खाते १५ दिन बीत गये थे। खर्च पास न रहा। एक दुतई ओढ़नेकी थी। उस समय एक क्षेमचन्द्जी उपदेशक आये थे। हमारी दुतई उन्हें बड़ी पसन्द आई, बोले हमें चाहिये। हमने ३ रू० में उनको बेंच दी। रुपये पास आनेसे हिम्मत आगई। यह जानकर कि गुरूजी मोरेना आगये हैं, हम दोनों वहाँसे चलकर मोरेना आगए। गुरुजीके चरण छुए। गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए, हमारे तो हर्षका पारावार न था जैसे निधि मिल गई हो।

## माँजीसे प्रथम परिचय

गुर्वाणीजीकी प्रकृति कुछ तेज थी। हमारे आनेके एक दिन पूर्व कोई गबदूलालजी पंसारी आये थे। गुरुजीने उन्हें भोजन कराया था। माताजी कुछ अप्रसन्न थी कि दूसरे दिन हम दो आ पड़े। गुरुजीने अपनी उदार स्नेहमयी प्रवृत्तिके अनुसार पत्नीसे कहा कि २ बालक आए हैं, परावठे बना लेना। माताजी एकदम नाराज होकर बोलीं 'कल एक गबदुआ आया था, आज दो गबदुआ आगये। कहाँतक तुम्हारे गबदुओंको आटा थोपूँ ? बड़बड़ाती गई और रसोई बनाई। हम दोनोंने भोजन किया। उस समय पाठशालाका निजी भवन न था, बल्कि पाठशालाके लिए स्थान किरायेपर ले लिया था, जिसका किराया ३ रु० मासिक था। सायंकाल हमलोग शाला भवनमें चले गये।

## मोरेना विद्यालयकी संस्थापना

इस प्रकार मोरेनामे पाठशाला हम दो विद्यार्थियोंसे शुरू हुई। 'जैन सिद्धान्त पाठशाला' उसका नाम रखा गया। एक वृद्धा थी जो रसोई बनानेको रखी गई, वह रसोई बना देती थी। डिप्टी चम्पतरायजीका नाम उस समय प्रख्यात था, बड़े धर्मात्मा व लगनशील व्यक्ति थे। हम दोनोंको १०) १०) रु० मासिक छात्रवृत्ति उनकी तरफसे प्राप्त होने लगी। १०, १२ दिन बाद श्री देवकीनन्दनजी, वरुवासागरसे यहाँ अध्ययन हेतु आये। अब हम ३ विद्यार्थी उसी वृत्तिमें अपना निर्वाह करने लगे। करीब ३ सप्ताह बाद श्री मक्खनलालजी आगए। गुरुजी इन दिनों भा० दि० जैन महासभाके मन्त्री थे, अतः मक्खनलालजीको महासभाके क्लर्कके रूपमें नाम लिखकर महासभासे १०) रु० मासिक वृत्ति देने लगे। यह समय वीर सं० २४३६ का था। सर्वप्रथम हमें श्री गोम्मटसार ( जीवकांड ) पढ़ाना प्रारम्भ हुआ। चूँकि बनारसमें 'सर्वार्थसिद्धि' पढ़ चुके थे, अत. पढ़नेमें कठिनाई नहीं हुई। क्रमशः कर्मकाण्ड, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रन्थ हम लोगोंने गुरुमुखसे पढ़े।

## ग्रन्थ समाप्तिका प्रकार

प्रत्येक ग्रन्थ जब समाप्तिपर आता था तो अन्तका थोड़ा-सा भाग गुरुजी छोड़ देते थे। ग्रन्थ पूरा नहीं करते थे। कालान्तरमे जब सुविधा मिलती थी तब 'श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर' ले जाते और ग्रन्थका शेष भाग वहाँ पढ़ाकर ग्रन्थकी समाप्ति करते थे। गुरुजीमे जितनी धर्मके प्रति श्रद्धा थी, भगवान्‌के प्रति उतनी ही प्रगाढ़ भक्ति भी थी। एक बार सोनागिरमें मूल मन्दिरजीके दर्शनार्थ गये। दर्शन स्तुतिके अनन्तर गुरुजीने एक प्राचीन पद्य अपनी मधुर वाणीसे पढ़ना प्रारम्भ किया—

**नाथ सुधि लीजो जी म्हारी।**
**मोहि भव भव दुखिया जान के. सुधि लीजो जो म्हारी॥**

गुरुजी पद्य पढ़ते जाते थे, आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। उनकी उस सातिशय भक्तिसे हम सब शिष्य भी गद्‌गद् होगए, शरीरमे रोमाञ्च होगया, नेत्र भींग गये। ५, ६ दिन इसी तरह श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का विशेषरूप में पूजन विधान, भक्ति चलती। इसके बाद ही अन्तिम दिन हमारे वे ग्रन्थ जिनका थोड़ा २ पाठ शेष छोड़ दिया था—पूर्ण किए जाते थे।

## कंटकमय गार्हस्थिक जीवन

मोरेना वापिस आनेपर पठनपाठन पूर्ववत् चालू रहा। एक दिन 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ पढ़ाते जाते थे, और यहाँ-वहाँ देखते जाते थे। क्या चिन्ता थी, हम समझ न सके। आग्रहपूर्वक पूछनेपर भी कुछ उत्तर नही दिया और अपनी पगड़ी उठा सिरपर रखकर जीन चले गये। मोरेनामें उन दिनों रुईकी मीलें थीं जिन्हे जीन कहते थे। हमलोग पीछे २ गये। बार-बार आग्रहपूर्वक पूछा कि गुरुजी क्या चिन्ता है, पर कुछ उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देरमें स्वयं बोले, तुम सब अपने

स्थान चले जाओ। हम आत्मघात न करेंगे, इतना समझते हैं। यह सुनकर हमलोगोंको बड़ा दुःख हुआ। सोचने लगे कि ऐसी क्या घटना होगई, जो गुरुजीने इतनी वजनदार बात कही।

हम सब सचिन्त और सचेत हो गये। आग्रहपूर्वक पूछनेपर भी उत्तर नहीं दिया पर वहीं त्रिलोकसारका पाठ पढ़ाने लगे, और कुछ समयके बाद ही पाठशाला लौट आये। थोड़ी देर बाद देखा कि माताजी एक ईंट हाथमें लेकर बड़बड़ाती आ रही हैं। घटनाचक्रको समझनेमें देर न लगी। साहूकार एक वहीं जो उपस्थित था, उसने माताजीको बहुत समझाया पर उनकी समझमें आना कठिन था। तब साहूकारने धमकी दी कि माँजी थानेमें रिपोर्ट कर दूँगा तो मुश्किल हो जायगी। अब क्या था, आगमें घी पड़ गया। महाजनको लेनेके देने पड़ गये। ईंटा लेकर उसके पीछे पड़ गई। वह बेचारा छिप गया। जब उसे ढूढ़ न पाई तो बड़बड़ाती घर वापिस चली गईं। यह था गुरुजीका गार्हस्थिक जीवन।

## परिहासपूर्वक माँजीका पश्चाताप

एक दिन गुरुजी और माँजीमें किसी बातको लेकर विवाद छिड़ गया। माँजी बोलीं कि तुम तो हो भाग्यहीन। गुरुजी बोले, भाग्यहीन तू होगी, हम क्यों भाग्यहीन हों? माँजीको पुरानी घटनाका स्मरण हो आया था, उस पर पश्चाताप भी था, बोलीं—'मैं तो भाग्यवान हूँ जो तुम जैसा गुणवान्, विद्वान्, सहनशील, गंभीर पति पाया है, और तुम भाग्यहीन हो जो मुझ जैसी कलहकारिणी पत्नी पाई है।' गुरुजी आज तर्कमें हार गए और अपनी पराजय पर मुस्कुरा दिए। गर्म वातावरण शान्त हो गया।

## सादगी व सरलता

गुरुजी कुछ ऊँचा सुनते थे। एक श्वेताम्बर जैन व्यापारीके साथ कुछ लेन-देनके बीच कुछ विवाद था। वह गुरुजीको अपनी बात समझाता था पर उन्हें सुनाई नहीं पड़ता था। गुरुजीने कहा, जरा जोरसे बोलिए। उसे कुछ गुस्सा-सा आ गया और जोरसे चिल्लाने लगा। गुरुजी बोले बस! बस!! भाई, इतना जोरसे बोलने पर मैं अच्छी तरह सुन सकता हूँ। इस उत्तर पर वह हँसने लगा। नाराजी काफूर हो गई।

गुरुजीकी यह विशेषता थी कि यदि उनके कथनमें कोई भूल हो जाय तो उसे भरी सभामें स्वीकार कर लेते थे और क्षमा याचना कर लेते थे। यह उनकी सरलता, निरभिमानता तथा महत्ता थी।

## खतौली दस्सा केस

खतौलीमें माणेलालजी दस्सा थे। 'जिनेन्द्र पूजन दस्सा कर सकता है या नहीं, वह कितनी पीढ़ी बाद शुद्ध हो सकता है अथवा हो ही नहीं सकता 'इस विषयको लेकर वहाँकी पंचायतके साथ उनका विवाद था। विवाद इस सीमा पर पहुँच गया कि मुकदमा भी चलने लगा था। इस केसमें गुरुजीकी गवाही दी गई थी। गुरुजीने अपने बयानमें बताया कि दस्सा भी कालान्तरमें शुद्ध हो सकता है, ऐसा नहीं है कि दस्सा की सन्तानपरम्परा सदाके लिए अशुद्ध ही बनी रहेगी। 'त्रिलोकसार' ग्रन्थके अनुसार उन्होंने बताया कि छठे कालमें सर्व प्रजा मद्य-मास भोजी और व्यभिचारी हो जाती है। पशुवत् मनुष्यका आचरण हो जाता है पर कालान्तरमें जब उत्सर्पिणी कालका तीसरा काल आता है तब उसी मनुष्य समाजकी सन्तान परम्परामें तीर्थंकरादि महापुरुषोंका जन्म होता है। यदि सन्तान शुद्ध न हो जाती होती तो अशुद्ध कुलमें तीर्थंकरादि महान् पुरुष कैसे जन्म लेते?

इन दिनों न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी, पं० प्यारेलालजी आदि भी समाजमें प्रख्यात विद्वान् थे। गुरुजीके ख्यातिसे उन्हें कुछ चिढ़ सी होगई थी, अतः इस अवसरको उचित समझकर सर्वत्र ऐसी प्रसिद्धि की गई कि गोपालदासजी तीर्थंकरोंको दस्साओंकी सन्तान बताते हैं इसलिये इनका बहिष्कार किया जाय। इनका व्याख्यान कोई न सुने। अनेक जगह इस आन्दोलनकी प्रतिक्रिया अनुकूल भी हुई और प्रतिकूल भी।

देहलीमें एक बार गुरुजीका भाषण हो रहा था। श्री पं० प्यारेलालजी भी सभामें थे। चूँकि इन्होंने गुरुजीके व्याख्यान सुननेका विरोध किया था, अतः लोग इन्हें सभामें देखकर चकित थे। मायलजी अच्छे शायर थे। तत्काल एक कविता बनाकर सभामें पढ़ी, जिसमें बताया था कि बहिष्कृत भाषण सुनने आज पं० प्यारेलालजी भी पधारे हैं, और उन्हें भाषण सुननेकी इतनी रुचि हुई है जो अनिमंत्रित भी पधार गये हैं।

## निर्भीकता और प्रामाणिकता

एक बार प्रसंगतः मुंबई जाना था। एक ही पुत्र था माणिकचन्द्र, जिसे साथ लेकर यात्रार्थ गये, उम्र छोटी थी

इस ख्यालसे उसका टिकट नहीं लिया था। मुंबई पहुँचनेपर जब उनका ध्यान गया और हिसाब लगाया तो उम्र ३ वर्ष ६ दिन की थी। गुरुजीको इस बातका अत्यन्त दुःख हुआ कि उन्हें यह ध्यान क्यों नहीं आया कि इसकी उम्र ६ दिन ज्यादा है, इसका टिकट लेना चाहिये था। उन्होंने आधे टिकटका पैसा घर बैठे ही मनिआर्डरसे ट्रेफिक मैनेजर मुंबईको भेजा और लिखा कि मुझसे गलती होगई, क्षमा करें।

उन दिनों अंग्रेजी राज्य था। अंग्रेज जाति नियम पालनमें बड़ी दृढ़ होती है। मैनेजर अंग्रेज था। इस घटनाका उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा, वह सोचने लगा कि हिन्दुस्तानी व्यक्ति भी क्या इतना प्रामाणिक हो सकता है? उसने इनसे प्रत्यक्ष वार्ता की और गुरुजीकी ईमानदारी तथा सत्यप्रियतापर उसने इनका सम्पूर्ण नाम ग्रामादि पता लिखकर यह सूचना प्रसारित की, 'पंडित गोपालदास वरैया' मोरेना (ग्वालियर) न्यायप्रिय व्यक्ति है यात्रामें इनके टिकट और लगेज पर कोई पूछ-ताछ न की जाय। यदि कोई कमी होगी तो वे स्वयं पूर्ति कर देंगे।

## विद्यालयके प्रति लगन

विद्यालयके प्रति आपकी बड़ी लगन थी। यह तो सर्व विदित था कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। बहुमूत्रकी शिकायत तो जीवनभर रही। उन दिनों स्वास्थ्य ज्यादा खराब था। चिन्ता यह थी कि विद्यालयकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं हो पाई। ऐसी बीमारीकी हालतमें भी गुरुजीने शोलापुर आदि स्थानोंकी यात्रा विद्यालयकी सहायता प्राप्त करने हेतु की। सेठ हरीभाई देवकरणने गुरुजीकी इस लगनको देखकर ३८०००) रु० की एक मुश्त सहायता ध्रौव्य कोषमें दी। आठ आना सैंकड़ा माहवारसे १९०) रु० मासिक ब्याज वे विद्यालयको देते थे।

## सर्वभौम कीर्ति व सम्मान

कलकत्ता विश्वविद्यालयमें सर्वधर्म सम्मेलन था। प्रख्यात विद्वानोंको आह्वान किया गया था। जैनधर्मकी ओरसे प्रतिनिधि गुरु गोपालदासजी थे। यद्यपि जैनधर्मके प्रति विद्वानोंमें विरोधी भावनाएँ थीं तथापि सम्मेलनकी सफलता तो सभी धर्मोंके प्रतिनिधियोंसे होती थी। सबहीके भाषण विभिन्न विषयोंपर थे। अन्तमें १० मिनिट जैन प्रतिनिधिको दिये गये थे। गुरु गोपालदासजीने इस थोड़ेसे समयमें जैनधर्मके स्याद्वाद सिद्धान्तका इस सुन्दरतासे प्रतिपादन किया, जिसे सुनकर सभी विद्वान् चकित होगये। अध्यक्ष थे सर गुरुदास बनर्जी। १० मिनटकी समाप्ति होनेपर गुरुजीने अपना अधूरा भाषण समाप्त कर बैठ जाना चाहा। गुरुजी तो अनधिकार न किसीका पैसा लेना चाहते थे, न अधिकार और न समय, इस सम्बन्धमें वे बड़े प्रामाणिक थे। अध्यक्षने देखा कि विषय बड़ा मनहरण तथा तर्कसंगत है। अतः उन्होंने गुरुजीसे अपना भाषण जारी रखनेकी प्रार्थना की तथा उन्हें यथेष्ट समय दिया। अपने भाषणको पुनः प्रारम्भ करते हुए गुरुजीने जिस खूबीसे जैनधर्मका समर्थन किया, उसे देखकर सभी विद्वान् आश्चर्य चकित थे। उनके सिद्धान्त इस भाषणसे स्वयं खण्डित होते जाते थे पर गुरुजीकी सुन्दर अकाट्य तर्कोंपर वे भी मुग्ध थे। भाषणकी समाप्तिपर अध्यक्षीय भाषण हुआ। अध्यक्षने सभी भाषणोंके सम्बन्धमें विधिवत आलोचना की। अन्तमें गुरुजीके भाषण की उन्होंने सर्वाधिक प्रशंसा करते हुए कहा, 'पण्डित गोपालदासजीको मैं अनेक धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने अपने भाषणमें अपने मतका इतने सुन्दर ढंगसे प्रतिपादन किया है कि जिससे यद्यपि सभी अन्य सिद्धान्तोंपर प्रकाश पड़ता है तथापि उनकी उपयोगिता या अनुपयोगिता जिस स्याद्वाद सिद्धान्तपर आधारित है, उससे वे विभिन्न सिद्धान्त एक प्रकारसे स्वयं खण्डित हो जाते हैं। मैंने अपने जीवनमें किसीको धन्यवाद नहीं दिया पर आज मैं इस तर्कशील विद्वान्‌के सुन्दर सरल सरस और सर्वप्रिय भाषणपर इन्हें धन्यवाद देता हूँ।'

स्पष्ट है कि गुरुगोपालदासजी अपने समयके अद्वितीय विद्वान् और तार्किक थे। अतः उनका सम्मान और अभिनन्दन अनेक सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओंने किया था तथा उन्हें न्यायवाचस्पति, वादि गजकेशरी एवं स्याद्वाद-वारिधि जैसी उपाधियाँ प्रदान की थीं।

●

# उनकी गौरवमयी गाथा

पं० मक्खनलाल शास्त्री न्यायालङ्कार

प्रधानाचार्य श्री गोपाल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, मोरेना

●

स्याद्वाद वारिधि, वादिगज केसरी, न्यायवाचस्पति श्रीमान् श्रद्धेय गुरुवर्य पं० गोपालदासजी बरैया आधुनिक विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। उनमें इतनी क्या विशेषता थी, उनके समकक्ष और उनसे भी बढ़कर पांडित्य रखने वाले कई विद्वान् उनके ही समयमें हो गये हैं परन्तु इतना नाम और महत्व उनका नहीं हुआ जितना श्रद्धेय गुरु गोपालदासजी बरैयाका हुआ है। इसके कारणों पर लक्ष्य डालनेसे पता चलता है कि उक्त गुरुवरमें दो कारण ऐसे थे, जिनसे वे सर्वमान्य बन गये और समकक्ष विद्वानोंसे बढ़कर महत्त्वशाली माने गये। पहिला कारण तो यह है कि वे विद्वत्ताके साथ पूर्ण निष्पृह वृत्तिवाले और गृहस्थोचित न्याय्य और धार्मिक आचरणवाले थे, दूसरा कारण उनकी धार्मिक गहरी लगन एवं धर्म प्रचारकी तीव्र भावना तथा प्रयत्न था। बस, ये दो ही कारण ऐसे थे जिनके फलोंको पाकर समाज आज उनका श्रद्धासे सदैव स्मरण करता है और उनकी जयन्ती मनाकर भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। अब हम उन्हीं दो बातों पर अन्य सम्बन्धित बातोंके साथ कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे।

## प्रारम्भिक जीवन

श्रद्धेय पंडितजी आगरा शहरके रहनेवाले और बरैया जातिमें जन्म लेनेवाले साधारण श्रेणीके गृहस्थ थे। लगभग २१, २२ वर्षकी आयु तक वे केवल सरकारी स्कूलमें मैट्रिक तक पढ़कर सामान्य जीवनमें रहे थे। उस समय तक उनमें धार्मिक वृत्ति और धार्मिक बोध नहींके बराबर था। अपनी आजीविकाके लिये उन्होंने रेलवे कर्मचारी रहकर कार्य किया, पश्चात् बम्बईमें किसी अंग्रेज कम्पनीमें भी वे कर्मचारी रहे। तत्पश्चात् वे अजमेरमें रहने लगे थे। वहाँ पर प्रसिद्ध श्रीमान् सेठ मूलचन्द नेमीचन्दजी सोनीके यहाँ कुछ समय तक कार्य किया था, ऐसा हमने सुना है। जिस रूपमें भी रहे हों, अजमेरसे ही उनके धार्मिक अभ्युदयका बीज उनके हृदय पटल पर अंकुरित हुआ। वहीं पर उक्त सेठ सा० के यहाँ एक मोहनलाल नामके सद्गृहस्थ कार्य करते थे, जो प्रातः मन्दिरमें प्रतिदिन १, २ घण्टे 'गोम्मटसार' ग्रन्थका स्वाध्याय करते थे। उस ग्रन्थमें गणितकी अनेक सहनानी ऐसी है जो बड़े २ विद्वानोंसे भी नहीं सुलभ पाती हैं। श्रद्धेय पं० गोपालदासजीका गणित विषयक ज्ञान बहुत अच्छा था, अतः उस गृहस्थने पंडितजीसे कहा कि आप कुछ गणितकी बातोंका समाधान करते जांय तो हमारा गोम्मटसारका स्वाध्याय अच्छा हो जाय। गणित प्रकरणोंको हम छोड़ देते हैं। पंडितजी झट राजी हो गये और प्रतिदिन मन्दिर जाकर उन्हें गोम्मटसारके गणित स्थलोको अच्छी रीतिसे समझाने लगे। उस अलौकिक गणितकी सहनानीको देखकर वह बहुत प्रसन्नताके साथ उक्त ग्रन्थके स्वाध्याय और उसके मनन करनेमें दत्तचित्त हो गये। और कई बार उन्होंने इस ग्रन्थका स्वाध्याय बड़े प्रेमसे मन लगाकर कर डाला। पश्चात् उन्होंने 'लब्धिसार' और 'क्षपणसार'का स्वाध्याय प्रारम्भ किया और तभीसे वे प्रतिदिन जिनेन्द्र दर्शनके विशेष अनुरागी बन गये। वही निमित्त उनके लिये बीजभूत उन्नतिका वृक्ष बन गया। शास्त्रों पर उनकी श्रद्धा बढ़ी, संस्कृतका उन्होंने अध्ययन किया, जैन व्याकरण 'कातन्त्र रूपमाला' पढ़ी जो बहुत ही सरल और बोधप्रद है। आजकल बनारस परीक्षाका पठनक्रम सर्वत्र जैन संस्थाओंमें चालू होनेसे जैन ग्रन्थोंका पठन-पाठन बन्द ही हो चुका है। अतः जैनेन्द्र प्रक्रिया, शकटायन अमोघवृत्ति आदि व्याकरण ग्रन्थ जो सरलतासे बहुत व्युत्पत्ति बढ़ाते थे, उनके स्थानमें बहुत कठिनतासे समझमें आनेवाले पाणिनीय व्याकरण ग्रन्थ—लघु कौमुदी, सिद्धान्त कौमुदी, भाष्य आदि चालू हो गये हैं। इसी प्रकार न्याय, साहित्य के जो जैन ग्रन्थ विशद तात्विक बोध करानेवाले हैं, उनका पठन-पाठन भी कम हो गया है। बनारस विश्वविद्यालयके पाठ्य ग्रन्थ ही अधिक रूपमें पाठ्य बन गये है। हमारे पंडितजी जैन ग्रन्थोंके पठन-पाठनके पूर्ण पक्षपाती थे।

पंडितजीने न्यायमें न्यायदीपिका पढ़ी थी, साहित्यमें चन्द्रप्रभकाव्य पढ़ा था, ये ग्रन्थ साधारण श्रेणीके हैं। साहित्य और न्यायके उच्च कोटिके गम्भीर ग्रन्थ यथा यशस्तिलक चम्पू, अष्टसहस्री आदि उन्होंने नहीं पढ़े थे। परन्तु उनकी बुद्धि प्रखर एवं प्रतिभाशाली थी; उन्हीं आद्य ग्रन्थोंसे उन्होंने उच्च ग्रन्थोंकी व्युत्पत्ति एवं उच्चकोटिकी विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी संक्षेपमें उनका क्षयोपशम बहुत ही निर्मल था।

## गुरु पं० बलदेवदासजी

श्रीमान् पं० बलदेवदासजी आगराके रहनेवाले थे। जैसवाल जातिको उन्होंने विभूषित किया था। उनका पांडित्य बहुत ही उच्च कोटिका था। अष्टसहस्री, तत्वार्थराजवार्तिककी वृत्ति प्रायः उन्हें कंठस्थ थी। पंचाध्यायीका मर्म वे पूर्णरूपसे जानते थे। जिनवाणी पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। सच्चे सम्यग्दृष्टि थे, साथ ही पूर्ण निरभिमानी और अत्यन्त शांत परिणामी थे।

एक बार श्री पं० बलदेवदासजी जब शास्त्र-सभामें शास्त्र सम्मत क्रियाओंका विवेचन कर रहे थे। अलीगढ़ निवासी पं० प्यारेलालजी पाटनीने प्रश्न किया था पंडितजी आप जो कथन कर रहे हैं वह हमारी आम्नायमें तो नहीं है। पंडितजीने बड़े शान्त भावसे उत्तर दिया कि मैं शास्त्रोंकी बातें कह रहा हूँ, किसी आम्नायकीबात नहीं कह रहा हूँ। इस उत्तरको सुनकर पाटनी महोदय चुप होगये। इसी प्रकार श्रीमान् पं० सेठ मेवारामजी खुरजा-वालोंने भी पं० बलदेवदासजीसे एक प्रश्न किया जिसका पंडितजीने बड़ी कुशलतासे समाधान कर दिया। पुनः पं० मेवारामजीने कहा कि पण्डितजी जो उत्तर आप दे रहे हैं वह तो राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिमें आया है, आप तो कोई अन्य उत्तर बतावें। तब पंडितजीने कहा कि जो उत्तर मैंने दिया है वह उपर्युक्त ग्रन्थोंमें आया है तो बहुत अच्छा है। मेरा उत्तर प्रमाण सहित हो गया, अब और मैं क्या ग्रन्थसे बाहरका उत्तर दूँ। मैं तो शास्त्र के आधार पर ही उत्तर देता हूँ। यह सुनकर मेवारामजी चुप हो गये। कई बार कुछ लोग बार २ प्रश्न करते थे तब महान् विद्वान् और महान शांत परिणामी पं० बलदेवदासजी एक बार उत्तर देकर फिर कह देते थे कि मैं तो उत्तर दे चुका, अब और अधिक प्रश्नोत्तर करना है तो पं० गोपालदासजीके पास जाओ, वे तुम्हारी सभी शंकाओंका समाधान कर देंगे।

श्री पं० बलदेवदासजी अजमेरके प्रसिद्ध श्रीमान् सेठ मूलचन्द नेमीचन्द सोनीके यहाँ कार्य करते थे। एक बार सेठजीने पंडितजीसे कहा कि आपके लाभके लिये हमने एक कोटा गल्लेका भरवा दिया था, उसमें जो मुनाफा हुआ है उसे ले लीजिये। पंडितजीने कहा कि भरते समय आपने मुझसे तो मजूरी ली नहीं थी, यदि उसमें घाटा होता तो मैं उसे कहाँसे देता, वह भार मुझे भुगताना पड़ता, इसलिये यह लाभ मैं नहीं ले सकता हूँ। सेठजी फिर कुछ नहीं बोले। वे समझ गये कि पंडितजी अत्यन्त निर्लोभवृत्तिवाले और निस्पृह सत्पुरुष हैं। इस थोड़ेसे प्रसंगको हमने इसलिये लिखा है कि स्व० पं० बलदेवदासजी साधारण परिस्थितिवाले होकर भी कितने निर्लोभी, कितने शांत, कितने विद्वान् और कितने आगम पर दृढ़ थे। वही पंडितजी श्रीमान् पं० गोपालदासजीके गुरु थे, जिनसे गुरुजीने पंचाध्यायी आदि ग्रन्थ पढ़े थे।

## हम मोरेना कैसे आये ?

एक बार बरैयाजी सम्मेदसिखरकी वन्दना और प्रतिष्ठासे लौटे तब वे बनारस ठहरे, मैदागिनकी धर्मशालामें उनसे मिलने और कुछ प्रश्नोत्तर करनेके लिये हम और हमारे साथी छात्र पहुँचे। उन दिनों हम कलकत्ता यूनिवर्सिटीकी साहित्य मध्यमा और क्वींस कालेज बनारसकी न्याय मध्यमा परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हो चुके थे। जागदीशी पंचलक्षिणी, सिद्धान्त मुक्तावली और दिनकरी इन न्यायग्रन्थोंके आधार पर हमने पंडितजीसे कुछ ऐसे प्रश्न किये जिन्हे हम कठिन और पेचीदे समझते थे और अन्तरंगमें छात्रोचित बुद्धिके अनुसार पंडितजीके प्रसिद्ध पांडित्यकी जाँच करना चाहते थे। उस समय जैनेतर न्यायग्रन्थोंके पढ़नेसे हम यह समझ रहे थे कि वास्तवमें द्रव्यसे गुण, कर्म (क्रिया) सामान्य विशेष भिन्न हैं; और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु ये चारों भिन्न २ द्रव्य हैं, शब्द आकाशका अमूर्तिक गुण है आदि। इन्हीं सब विषयोंपर करीब दो घण्टे प्रश्नोत्तर हुए, और उन्होंने समाधान करते हुए जो उत्तर दिये वे इतने अकाट्य एवं सयुक्तिक थे कि हम लोग चुप हो गये, इतना ही नहीं किन्तु पंडितजीके गम्भीर एवं उद्भट पांडित्यकी भूरि २ प्रशंसा करने लगे। उसी समय हम लोगोंकी भावना बदली और पंडितजीके पास सिद्धान्त ग्रन्थोंके पढ़नेकी तीव्र अभिलाषा जाग उठी। पंडितजीसे इस सम्बन्धमें चर्चा हुई। उन्होंने कहा, तुम लोग मोरेना आ जाओ, वहाँ हम तुमको पढ़ायेंगे।

बस, कुछ समय पश्चात् हम, पं० बंशीधरजी, पं० देवकीनन्दनजी, पं० उमरावसिंहजी ( ब्र० ज्ञानानन्दजी ), चारों छात्र बनारससे मोरेना आ गये और पंडितजीसे सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। तब तक विद्यालयकी इमारत नहीं थी, एक मकान किराये पर लिया गया था जिसमें हम सब रहते थे और हाथसे भोजन बनाते थे।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि हम लोगोंके पहले गुरुजीके पास गोम्मटसारादि ग्रन्थोंका अध्ययन श्री पं० नन्दनलालजी शास्त्री शोलापुर, श्री पं० खूबचन्दजी शास्त्री व श्री पं० मनोहरलालजी पाढ़म आदि छात्र कर चुके थे।

विद्यालय भवनका निर्माण जिस समय हुआ, उस समय मोरेनाके कुछ पंचोंने ( जो मंदिरके प्रबन्धक थे ) इसका पर्याप्त विरोध किया, उनका कहना था कि मन्दिरके अहातेमें विद्यालय बननेसे मन्दिरकी जमीन चली जायगी। उस विरोधको देखकर तत्कालीन सूबा महोदय ( जिला कलेक्टर ) मुन्नालालजीने पंडितजीसे कहा था कि आप इस पंचायती झगड़ेसे विद्यालयको बचावें। हम आपको बिना मूल्य जमीन और सामान देते हैं। पंडितजीने कहा, यदि विद्यालय नहीं चलेगा तो यह इमारत धर्मशालाके रूपमें काम आ जायगी। अतः पण्डितजीने विद्यालय भवनका निर्माण मन्दिरके अहातेमें ही करा दिया, जिससे आज मन्दिरका सौन्दर्य और उपयोगिता भी बढ़ गई है।

इसी संस्थासे लगा हुआ एक विशाल बगीचा भी ग्वालियर सरकारसे प्राप्त है जो करीब एक लाख रुपयेका समझा जाता है। इसमें सभी छात्रोंके लिये खेलनेका स्थान है, साथ ही एक कृषि विभाग भी है। आज इस बगीचेमें कई क्वार्टर भी बना दिये गये हैं, जिससे संस्थाको स्थायी आमदनी होने लगी हैं।

सन् १९१७ में पंडितजीका स्वर्गवास हुआ था। उसी वर्ष इन्दौरमें स्व० सर सेठ हुकमचन्दजीकी अध्यक्षतामें एक मीटिंग हुई थी, उस मीटिंगमें इस महाविद्यालयके साथ पंडितजीकी अनुपम धर्म एवं समाज सेवाके उपलक्ष्यमें उनका नाम जोड़नेका प्रस्ताव पास हुआ था, तभीसे इस संस्थाका नाम 'श्री गोपाल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय' प्रसिद्ध हुआ है। अस्तु,

## विलक्षण क्षयोपशम

गुरुजीका क्षयोपशम बहुत ही निर्मल था। यद्यपि संस्कृत ग्रन्थ उन्होंने साधारण ही पढ़े थे तथापि उच्च कोटिके गम्भीर ग्रन्थों पर भी उनका अधिकार था। एक बार 'श्लोकवार्तिक' की एक कठिन पंक्तिको हम नहीं समझ सके, तब पंडितजीके पास जाकर उस पंक्तिका आशय हमने पूछा। पंडितजीने पूर्वापर संदर्भ देखकर तत्काल यह पंक्ति लगादी, और हमें समझा दिया। उस समय हमें बहुत प्रसन्नता हुई।

एक बारकी बात है कि मोरेना महाविद्यालयमें एक ब्राह्मण विद्वान् पं० सदाशिव मिश्र छात्रोंको न्याय-साहित्य पढ़ानेके लिये रखे गये। हमारे साथ उनकी चर्चा हुई। उसी प्रसंगमें ईश्वर सृष्टिकर्तृत्व पर विचार चल पड़ा। तब वह बोले कि आपके गुरुजीके साथ हम छह मास तक इस विषय पर शास्त्रार्थ करनेको तैयार हैं। हम उसी समय उन्हें वरैया-जीके पास ले गये। उनकी ज्योंकी त्यों बात कही। वरैयाजीने बड़ी उमंगके साथ उनसे कहा कि आप ईश्वर सृष्टिकर्तृत्व पर हेतु, युक्ति दीजिये। मिश्रजीने, जो न्यायतीर्थ, सांख्यतीर्थ थे, हेतु दिया 'क्षित्यंकुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवत्।' वरैयाजीने उस हेतुमें असिद्ध, विरुद्ध, अनैकांतिक आदि दोष बता दिये और कहा कि इन दोषोंका वारण करिये। एक दो बात कहकर पं० सदाशिवजीसे फिर उत्तर नहीं बना और वरैयाजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। हमने कहा कि आप तो छह माह शास्त्रार्थकी बात कहते थे, आप तो आध घण्टेमें ही चुप हो गये। वे हँसने लगे।

अजमेरमें स्वामी दर्शनानन्दजीके साथ वरैयाजीका शास्त्रार्थ बहुत ही प्रभावशाली हुआ था। बाहरकी जनता भी बहुत आ गई थी। नसीराबादके श्री सेठ ताराचन्दजी और रायबहादुर सेठ नेमीचन्दजी सोनी उसके व्यवस्थापक थे। शास्त्रार्थ लगभग ४, ५ घण्टे चला था, विषय ईश्वर सृष्टिकर्तृत्व था। हम भी वहाँ उपस्थित थे। वरैयाजीका प्रश्न था कि ईश्वर एक है, तब उसका स्वभाव भी एक समयमें एक ही होगा, अतः वह विरोधी अनेक कार्य एक ही समयमें कैसे कर सकता है? उत्तरमें स्वामीजीने कहा कि जैसे मशीन कपड़ा बनते हुए नाना विरोधी कार्य करती है वैसे ईश्वर भी करता है। वरैयाजीने तुरन्त उत्तर दिया कि मशीन एक द्रव्य नहीं है, वह तो अनेक द्रव्यरूप है, परन्तु ईश्वर तो एक ही स्वात्म द्रव्य है। इस पर स्वामीजीको चुप होना पड़ा। प्रश्नोत्तर और भी हुए। उस शास्त्रार्थमें सभापतिने वरैयाजीकी विजय घोषित की, और उनकी कुशाग्र बुद्धिकी बहुत प्रशंसा की। इटावा में 'जैन तत्व-प्रकाशिनी-सभा' में भी वरैयाजीसे और आर्य समाजी विद्वानोंसे प्रश्नोत्तर हुए थे, वहाँ भी वरैयाजीने उन्हें समझाकर चुप कर दिया।

कलकत्तामें वहांके प्रसिद्ध कालेजमें स्व० पं० सतीशचन्द्रजी विद्याभूषणकी अध्यक्षतामें उनके जैन तत्वों पर मार्मिक भाषणोंके उपलक्ष्यमें अनेक विशिष्ट विद्वानोंके समक्ष उन्हें 'न्यायवाचस्पति' की उपाधि प्रदान की गई। इसी प्रकार उन्हें समाज द्वारा 'वादिगज केसरी'की उपाधि मिली थी।

## ग्रन्थ रचना

वरैयाजीने एक तो 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' नामक ग्रन्थ बनाया है। इस छोटी सी पुस्तकमें उन्होंने प्रश्नोत्तर रूपमें प्रमाण, नय, निक्षेप, गुणस्थान, मार्गणा, वर्ग, वर्गणा, स्कंध आदि संज्ञावाचक सैद्धान्तिक पदोंके अर्थ लक्षण रूपमें बताये हैं। यह पुस्तक छोटी होने पर भी बड़ी बोधप्रद है। दूसरा ग्रन्थ उन्होंने 'जैन सिद्धान्त दर्पण' बनाया है। यह दो खण्डोंमें विभाजित है। इसमें गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि ग्रन्थोंके आधार पर तीन लोकका स्वरूप, प्रतर जगत्प्रतर, घन घनांगुल, आदि सिद्धान्त रचनाका, विशेषकर करणानुयोगका विवेचन किया है। ये दोनों ग्रन्थ हिन्दीमें हैं। बहुत उपयोगी है। स्वाध्याय प्रेमी एवं छात्रोंके लिये पूर्ण सहायक हैं। तीसरा 'सुशीला' नामक उपन्यास है, जिसमें रोचक कल्पित कहानीके रूपमें शीलधर्मकी रक्षाका महत्व बताया गया है।

बम्बई प्रान्तिक सभाके मुखपत्र 'जैनमित्र' का सम्पादन भी उन्होंने कई वर्ष तक किया था। उसमें पांडित्यपूर्ण अनेक लेख और सामाजिक विषय विचारपूर्ण लिखे जाते थे। खण्डन-मण्डन भी यदा कदा रहता था जिसमें धार्मिक विषयों-की रक्षा एवं पुष्टिकी जाती थी।

## अन्य महत्वपूर्ण कार्य

बम्बई प्रान्तिक सभा तथा भारतवर्षीय दि० जैन धर्म संरक्षिणी (अब उसमेंसे धर्म संरक्षिणी यह नाम हटा दिया गया है।) महासभाके संस्थापकोंमें वरैयाजी प्रमुख थे। बम्बई प्रान्तिक सभाकी स्थापनामें दानवीर स्व० सेठ माणिकचन्द हीराचन्द बम्बई, सेठ हीराचन्द नेमचन्द शोलापुर, पं० धन्नालाल काशलीवाल आदि भी प्रधान थे। महासभाकी स्थापनामें मथुराके राजा लक्ष्मणदासजी, अलीगढ़के पं० प्यारेलालजी पाटनी, सहारनपुरके लाला रूपचन्दजी, लाला मिश्रसेनजी आदि महानुभाव थे। महासभाके शिक्षा विभागके अन्तर्गत मथुरामें महाविद्यालय खोला गया, उसके संचालक मंत्री वरैयाजी ही थे।

## तदविरुद्ध शब्द पर विवाद

जिस समय श्री सम्मेदशिखर पर सिवनीके श्रीमंत सेठ पूरणसावने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा धूमधामसे कराई थी, उस समय महासभाका अधिवेशन भी वहाँ हुआ था। मेलेमे बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई थी। वरैयाजी, पं० धन्नालालजी, पं० लालारामजी शास्त्री आदि विद्वत्मंडली वहाँ पहुँची थी। रात्रिको वरैयाजीका सम्यग्दर्शन विषय पर करीब १॥ घंटे भाषण हुआ। उस भाषणको कई हजार जनताने मनोमुग्ध होकर सुना। तत्पश्चात् महाविद्यालयके पठनक्रम पर विचार-विमर्श चला। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि उस समय समाजमें पंडित पार्टी और बाबू पार्टीके नामसे दो पार्टियाँ प्रसिद्ध थीं। बाबू पार्टी चाहती थी कि पठनक्रममें लौकिक शिक्षा भी रखी जाय और महाविद्यालयमें अंग्रेजी, भूगोल आदि विषय भी पढ़ाये जाँय। वरैयाजीने महाविद्यालयके मंत्रीके नाते यह बात कही कि लौकिक शिक्षणमें 'तदविरुद्ध' पद जोड़ दिया जाना आवश्यक है। इसका खुलासा यह है कि महाविद्यालयमें वही लौकिक शिक्षण दिया जाय जो दि० जैनधर्म के सिद्धान्तसे विरुद्ध नहीं हो, जैसे 'पृथ्वी घूमती है, सूर्यचंद्र स्थिर हैं, पृथ्वीका कुल विस्तार ८४००० वर्गमील हैं' आदि बातें जैन सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ती हैं, उनका शिक्षण बालकोंको नहीं दिया जाना चाहिये। इस पर बहुत बड़ा विवाद खड़ा हो गया। बाबू पार्टीके अगुआ ब्र० शीतलप्रसादजी, बाबू अजितप्रसादजी एम० ए० लखनऊ आदि लोगोंका कहना था कि 'तदविरुद्ध' पद नहीं रखा जाय, सभी प्रकारकी आंग्ल विद्या, खगोल भूगोल आदि विषय पढ़ाये जाँय। पं० गोपालदासजी, पं० धन्नालालजी, और पं० लालारामजी शास्त्री इसका विरोध करते थे। इसी विवादमें रातभर बीत गई। जनता पहाड़ पर बन्दनाके लिये जाने लगी। सभा समाप्त हो गई।

## महाविद्यालयकी कायापलट नहीं होने दी

मथुरा महाविद्यालयकी कायापलट होते २ वरैयाजीने बचा ली। उसका संक्षिप्त वृत्त यह है कि भा० दि० जैन महासभाके महामंत्री कानपुरके डिप्टी चंपतरायजी थे। उन्होंने महासभाका कार्य अच्छा चलाया था। उनका विचार कुछ

बाबू लोगोंकी सम्मतिसे यह हुआ कि मथुराके विद्यालयको जो महासभाके आधीन था, सहारनपुर पहुँचाया जाय और वहाँ उसे हाईस्कूलके रूपमें बदल दिया जाय। बा० अर्जुनलालजी सेठी और दो सज्जनोंने आकर मथुरासे महाविद्यालयको सहारनपुर ले जानेका पूरा प्रयत्न किया। उसके मंत्री बाबू मूलचन्दजी वकीलने डटकर विरोध किया फिर भी वे लोग अपने प्रयत्नमें सफल हो गये। सहारनपुर पहुँचे जाने पर बाबू बनारसीदासजी एम० ए० को महाविद्यालयका सं० मंत्री बनाया गया। डिप्टी चम्पतरायजीने उनसे सलाह करके महाविद्यालयको स्कूल रूपमें बदलनेका ज्योंही उपक्रम किया त्योंही पं० गोपालदासजीको यह सब वृत्त विदित हो गया। तब 'जैनमित्र'में अपने सम्पादकीय लेख उन्होंने बराबर निकाले, समाजमें हलचल पैदा कर दी। इस प्रकरणमें डिप्टी चंपतरायजी और बाबू बनारसीदासजीमें कुछ मुद्दोंको लेकर आपसमें विरोध हुआ और उन दोनोंका पत्र व्यवहार सब समाचार पत्रोंमें छपाया गया। परिणामस्वरूप महाविद्यालय उसी रूपमें बना रहा, वह स्कूल नहीं बन सका।

यह कह देना भी आवश्यक है कि डिप्टी सा० और बनारसीदासजी दोनों ही विचारशील एवं सज्जन प्रकृतिके पुरुष थे।

## व्यापार की लगन

पंडितजीकी परिस्थिति आर्थिक दृष्टिसे साधारण थी, अपनी आढ़तकी दूकान करते थे। पढ़ानेका कार्य वे बिना किसी प्रकार का श्रमफल लिये निस्पृह एवं केवल परमार्थ दृष्टिसे करते थे। उसी समय उनकी धार्मिक लगन और इस विद्यादानके परमार्थ कार्यको देखकर आकलूज ( दक्षिण ) के प्रसिद्ध व्यापारी श्रीमान् सेठ सूरचंदजी गांधी ( फर्म मालिक, नाथारंग गांधी ) ने मोरेनामें पंडितजीके साथ साझेदारीमें आढ़तकी बड़ी दूकान खोल दी। उस समय मोरेनामें कपासकी खेती बहुत होती थी, ग्वालियर सरकारने मोरेनामें रुईकी गांठ बाँधनेका एक पेच भी चालू कर दिया था, इसीलिये मोरेनाका नाम 'पेच मोरेना' पड़ गया। सेठ सूरचंदजी गांधी बहुत उदार, सादा जीवन बितानेवाले अत्यन्त सज्जन धर्मात्मा पुरुष थे। पंडितजीको लाभ पहुँचानेकी दृष्टिसे ही उन्होंने मोरेनामें पंडितजीकी साझेदारीमें दूकान खोली थी। जब कपास का व्यापार बहुत बढ़ गया तब खुरई ( सागर ) के श्रीमंत सेठ मोहनलालजीने एक जीन खोल दी, उसमें प्रतिदिन अनेक चरखियो द्वारा कपास ओटा जाता था। पंडितजीको उस जीनका डायरेक्टर बनाया गया। वह व्यापार भी बहुत अच्छा चला। फिर भी दिनभर हिसाब-किताब कर्मचारियोंकी देखरेख आदिके साथ अपने ४,५ घंटेका समय हम लोगोंके पढ़ानेमें लगाते थे। पाठ पढ़ाते समय वे दूकान और जीनके सब कार्योंको भूल जाते थे। मुनीमोंसे कह देते थे कि तुम कामको देखो। छात्रोंको पाठ पढ़ाना, धार्मिक तत्वचर्चा करना समाजभरसे प्राप्त होनेवाले पत्रोंका उत्तर दिलाना, आदि कार्योंमें वे यथेच्छ समय देते थे।

## दक्षिणमें जागृति

एक बार पण्डितजीको दक्षिण महाराष्ट्र सभाका सभापति बनाया गया। उस समय पंडितजीका जगह-जगह प्रशंसनीय स्वागत हुआ। उस समय सभापति पदसे दिये गये पण्डितजीके भाषणकी दक्षिणके विद्वत्समाजमें बहुत आदर और मान्यता हुई। दक्षिण समाजमे जागृतिकी लहर दौड़ गई थी।

श्री पं० गोपालदास और न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी दोनों समकक्ष विद्वान् थे। दोनोंकी विद्वत्ता समाजमें मान्यता और आदर तथा प्रभाव बराबर था, प्रत्युत: न्यायकी प्रखर विद्वत्ता न्यायदिवाकरजीकी अधिक थी। सहारनपुरकी प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित धार्मिक मण्डली, जिसमे श्रीमान् लाला जंबूप्रसादजी तथा लाला हुलाशरायजी रईस प्रधान थे, न्यायदिवाकर पं० पन्नालालजी पर मुग्ध थी और तत्वचर्चाके लिए उन्हें सहारनपुर ही रखती थी। फिर भी सैद्धान्तिक विद्वत्ता के साथ धार्मिक लगन, समाजमें धार्मिक जागृति एवं अपने अनुरूप सिद्धान्तवेत्ता ठोस विद्वानोंकी सृष्टि तैयार करनेके कारण स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजीकी ख्याति, गौरव एवं अमर कीर्ति अपना असाधारण स्थान रखती है।

## संयमी जीवन और न्यायनिष्ठा

पंडितजी न्यायपूर्ण संयमी जीवनवाले आदर्श पुरुष थे। उन्होंने अपने व्यापार और घरेलू व्यवहारमें रेलवे और चुंगी की चोरी कभी नहीं की।

एक बार पंडितजीने ६ कुरता सिलाकर रख दिये, जब वे बाहर जाने लगे तब उन सिले हुये कुरतोंको मंगाकर प्रत्येक कुरतेको पहनकर उतारकर रखते गये। हमने पूछा कि पंडितजी! हरएक कुरता क्यों पहनकर आप उतार रहे हैं? पंडितजीने कहा कि नई वस्तु पर सरकारी चुंगी लगती है, हमने इन कुरतोंको पहन लिया है, अब ये हमारे बर्ते

हुए समझे जायेंगे। इससे हमको चुंगी देनेकी आवश्यकता नहीं रही। इसी प्रकार रेलवे टिकट, अधिक बोझा ले जाने आदि में पंडितजीने सदैव नियमोंका और न्यायवृत्तिका ही पालन किया। अपने पुत्र माणिकचंदको बम्बई ले जाते समय २।। वर्ष से कुछ दिन अधिकका हो जानेके कारण आधे टिकटके पैसे चुकानेकी घटना तो सर्व प्रसिद्ध है ही। इसी प्रकार व्यापारी मामलोंमें माल मंगाने और ले जानेमें भी उन्होंने कभी सरकारी नियमोंका उल्लंघन नहीं किया। उनकी इस न्यायोचित वृत्तिकी प्रसिद्धिका परिणाम यह हुआ कि चुंगी या रेलवे अधिकारी उनके मालका महसूल मांगते नहीं थे, माल आजाने पर वे स्वयं भेज देते थे।

निस्पृह वृत्ति इतनी थी कि उन्होंने किसी स्थानमें किसीसे कभी कोई भेंट नहीं ली। उसीका प्रतिफल यह था कि वे निर्भीक होकर बड़े-बड़े व्यक्तिके सामने उचित बातको कहनेमें नहीं चूकते थे।

## राज दरबारमें सम्मान

एक बार छतरपुर ( बुंदेलखंड ) नरेशने पंडितजीको बुलाया था। पंडितजी वहाँ गये, साथमें हम भी थे। दरबारमें अनेक अनेक विद्वान् थे। पंडितजीका प्रभावशाली भाषण सुनकर उपस्थित विद्वानों और राजा सा० को बहुत संतोष हुआ। पीछे कुछ शंका समाधान भी हुआ। किसी जटिल प्रश्नका उत्तर देनेमें उन्हें कुछ सोचना पड़ता था तो वे अपने अभ्यासके अनुसार लघुशंका ( पेशाब )को जाते थे और वहाँसे लौटकर बैठते पीछे, पहले उत्तर देते थे। कभी-कभी प्रश्नके होनेपर अपनी पगड़ी उतारकर शिरपर हाथ फेरते थे, फिर तत्काल उत्तर देते थे। वहाँ दरबारमें भी उन्होंने पगड़ी उतार ली, परन्तु दरबारका ध्यान आते ही झटपट उसे शिर पर रखने लगे। राजा सा०ने कहा कि पंडितजी, आप विशिष्ट विद्वान् हैं। आपके लिए दरबारमें भी माफ है, आप भले ही नंगे शिर रहिये। पण्डितजीने दरबारका आदर और विनयका ध्यान रखकर पगड़ी शिर पर लगाली। पीछे दरबारने कहा कि पण्डितजी आप यदि स्वीकार करें तो हमारी यह इच्छा है कि आप छतरपुर ही रहें, हम आपकी मुखद आजीविकाके लिए एक गाँव लगा देंगे। पंडितजीने तुरन्त उत्तर दिया कि महाराज ! आपका आदर शिरोधार्य है, परन्तु हम मोरेना छोड़कर यहाँ रहनेमें असमर्थ हैं। हमारा वहाँ व्यापार चल रहा है और छात्रोंका अध्ययन भी चल रहा है, दोनों नहीं छोड़े जा सकते हैं। हाँ, जब आप बुलाना चाहेंगे तब हम फिर आपकी सेवामें आजायँगे। पंडितजीने श्रीफलके सिवाय और कोई भी भेंट स्वीकार नहीं की। पंडितजीकी निस्पृह वृत्ति और उनकी विद्वताका यह अच्छा उदाहरण है।

## आ० मजिस्ट्रेटी और सादगी

मोरेनामें ग्वालियर सरकारकी ओरसे आप ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी कुछ समय तक रहे। आपके द्वारा होनेवाले न्यायपूर्ण निर्णयसे सबको संतोष था। राज्यमें आपकी मान्यता थी। आप सदैव सादा वेशमें रहते थे। धोती घुटने तक ही रहती थी, कुरता पहनते थे, पगड़ी लगाते थे, देशी जूता पहनते थे। बाहर जाते समय अँगरखा पहनते थे। इसी पोशाक के उनके दो बड़े-बड़े तैलचित्र मोरेना महाविद्यालयके कार्यालयमें लगे हुए हैं। उनकी सादगीको देखकर उनसे मिलनेके लिये या संस्था देखनेके लिए जो कोई नवीन अधिकारी ( आफीसर ) आता था तो कभी-कभी नौकरके अनुपस्थित रहने पर पंडितजी स्वयं जल्दी-जल्दीमें कुरसी भी उसके लिए रख देते थे। उस समय उस आफीसरको यह प्रतीत होता था कि ये ( पंडितजी ) कोई प्रभावशाली विद्वान् नहीं हैं, एक साधारण व्यक्ति हैं। परन्तु जब बैठकर पंडितजीकी उससे बातें होती थीं, चाहे कोई शास्त्रीय चर्चा या लौकिक व्यवहारिक चर्चा क्यों न हो, बड़े से बड़ा आफीसर भी तत्काल उनसे प्रभावित होकर ही जाता था। पंडितजीका गुण और महत्व उनके सादा वेशसे नहीं किन्तु उनकी प्रतिभापूर्ण विद्वत्ता और उनके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्वसे प्रगट होता था।

## धार्मिक साहस

एक बार सम्मेदशिखर महापावन सिद्धक्षेत्र पर अंग्रेजोंने पार्श्वनाथ भगवानकी टोंकके पास बँगले बनानेकी सूचना प्रकटकी और यह भी स्पष्ट था कि उन बंगलोंके बनानेका लक्ष्य शिकार खेलना था। यह बात समाजमें सर्वत्र बड़े दुःखके साथ विक्षोभका कारण बन गई। उसी समय पंडितजीने जैनमित्र पत्रमें अपने सम्पादकीय लेखों द्वारा समाजमें गहरी हलचल मचादी, और स्वयं यह प्रगट कर दिया कि यदि अंग्रेज सरकार बंगले बनानेकी योजनाको रद्द नहीं करेगी तो उन बंगलोंकी चुनी जाने वाली दीवालमें हम अपने चुने जानेकी घोषणा करते हैं और जो भाई चाहें वे अपने नाम हमारे पास भेज दें। यह अनर्थ पहाड़की पावन भूमि ( सिद्धक्षेत्र ) में नहीं होने देंगे। उस समय समाजसे लगभग ७५

स्त्री और पुरुषोंके नाम आये थे, जो पंडितके साथ गिलायेमें सननेके लिये तैयार थे। वह एक असाधारण एवं प्राणोंकी बाजी लगा देनेकी भयंकर घटना थी। उस धार्मिक साहसका परिणाम यह हुआ कि सरकारने अपनी योजनाको रद्द कर दिया। उस समय पंडितजीके सम्पादकत्वमें निकलनेवाले 'जैनमित्र'की नीति दृढ़ धार्मिक और अधर्मकी बातका तीव्र खंडन कर समाजको सावधान करनेवाली थी।

एक बारकी बात है कि आगरामें रथोत्सव हो रहा था। खवासी, सारथी आदिकी बोली हो जानेके पश्चात् रथ बाजारोंमें घूमता जा रहा था। मध्यमें खुरजाके प्रसिद्ध श्रीमान् पं० मेवारामजी आ गये। उन्होंने अपने साथियों द्वारा कहलवाया कि यदि पं० मेवारामजीको सारथी पद पर बिठा दिया जाय तो वे मन्दिरको एक मुस्त पुष्कल रु० देने को तैयार है। पंचोंने यह सोचकर कि रथ बाजारोंमें घूम भी चुका है, अब यदि उन्हें सारथी पद पर रथके ऊपर बिठा दिया जाय तो मन्दिरको लाभ हो जायगा; इस विचारसे उन्होंने पहले सारथीको समझाकर उतार दिया और उक्त श्रीमान् पंडितको रथ पर बिठा दिया। यह चर्चा श्रीमान् पं० गोपालदासजीने सुनी, उस समय उन्होंने कहा कि यह नहीं हो सकता। पं० मेवारामजी पहले आकर बोली ले सकते थे। अब दूसरोंकी बोली हो चुकी है, अतः अब रथके सारथीको बदलकर उनका अपमान नहीं होना चाहिये। परिणाम यह हुआ कि फिर पं० मेवारामजी रथ पर नहीं बैठे, पहले ही सज्जन बैठाये गये। यह कह देना आवश्यक है कि श्री पं० मेवारामजीकी सारथी बननेकी बात किसी विरोधसे नहीं थी किन्तु केवल धार्मिक अभिरुचि एवं भक्तिवश थी फिर भी वह वरैयाजीकी दृष्टिमें नीति विरुद्ध समझी गई।

जिस समय शिखरजीकी प्रतिष्ठा करके जैन समुदाय ईसरी स्टेशन ( पारसनाथ ) पर इकट्ठा हो गया और टिकटके लिये खिड़की पर भीड़ हो गई, उस समय अवसर पाकर टिकट बाबूने प्रत्येक व्यक्तिसे एक आना फी टिकट प्राइवेट ठहरा लिया। टिकट दिये जा रहे थे, परन्तु श्रीमान् वरैयाजीको जब यह बात विदित हुई तब उन्होंने उस नियम विरुद्ध लिये गये एक आनेको नहीं लेनेके लिये टिकट बाबूको बाध्य कर दिया, यही नही, लिया हुआ एक आना ( प्रत्येक व्यक्तिका ) लौटवा दिया।

गुरुजीके सम्बन्धमें मैंने उक्त घटनाएँ संस्मरणके रूपमें अंकित की हैं। वास्तवमें गुरुजीका जीवन शिक्षा, सेवा एवं सदाचारकी दृष्टिसे अत्यन्त महनीय है। ऐसे आदर्श व्यक्ति कभी कदाचित् ही जन्म ग्रहण करते है और वे युगनिर्माता बन समाजको नया मार्ग दिखलाते है।
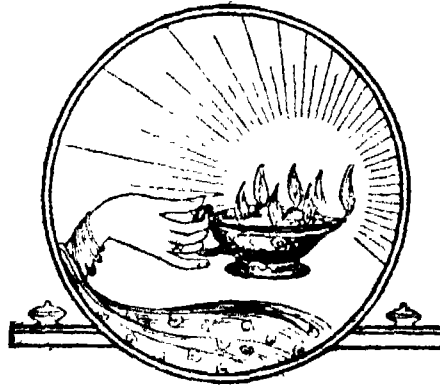
# गुरूणामपि गुरुः

पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री, प्रधानमन्त्री भा० दि० जैन संघ, मथुरा
प्राचार्य-जैन शिक्षा संस्था, कटनी

●

सन् १९११ की बात है। स्व० गुरुवर्य पं० गोपालदासजी बरैया कटनी पधारे थे, श्री पं० खूबचन्दजी भी साथ थे। रायपुरकी ओर डेपुटेशन जा रहा था। कटनीमें उस समय विमानोत्सव था, अतः वे कटनी ३ दिन रुके। शास्त्र प्रवचन हुआ, सभीने उनके अमृतोपदेशका पान किया। कटनी निवासी यह जानकर कि जैन समाज का मुकुटमणि, प्रख्यात विद्वच्चूणामणि, सिद्धान्तका समुद्र, प्रखर पंडित आज उनके बीच में है, बहुत प्रसन्नता अनुभव कर रहे थे।

## एक पण्डितमन्यका प्रश्नोत्तर

एक पण्डितमन्य हरप्रसाद दाऊजी नामक सज्जन कटनीमें थे, पण्डित तो नहीं थे पर पण्डिताईका प्रदर्शन उपस्थित जनसमूहमें करना इष्ट था, अतः गुरुजीसे प्रश्न कर बैठे कि आप तो बड़े पण्डित है, बताइये गतें (गतियाँ) कितनी होती हैं ? प्रश्न बहुत साधारण था तो भी गुरुजी बच्चेकी भी जिज्ञासा प्रेमसे शान्त करना जानते थे। उत्तर दिया, भाई गतियाँ तो चार होती हैं, नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति। उत्तर सुनते ही दाऊजी बोले कि क्या हमें 'धर्पालया' ही समझते हो ? तुम यह जानते हो कि यहाँ कोई समझदार पण्डित ही नहीं है। गतियाँ पाँच होती है। गुरुजी ने बड़े स्नेहसे पूछा भाई ! नाराज मत हो, यदि पाँचवीं गति होती है तो तुम्हीं बता दो ! वह कौनसी है ?

दाऊजीने उत्तर दिया 'मोक्षगति' ये पाँचवी गति है। एक स्तुतिमें लिखा है कि,

**"जबहिं प्रभु पंचम गति पाई"**

देखो भाई, ये लिखा है पंचम गति। ये पंडितजी चार ही गति बताते है। इस जल्पवादसे क्षण-एक गुरुजी अवाक् रह गए। उन्होंने सोचा कि वितंडावादी मनुष्य भी सभामें सामान्य जनताकी अजानकारीका लाभ उठाकर किस प्रकार अपनी कथित पंडिताईका झंडा फहरा देता है, तथा दूसरे व्यक्तिको नीचा दिखानेका हौसला कर लेता है।

गुरुजीने कहा कि दाऊजी ! गति तो वास्तवमें वही एक है जो आपने 'मुक्ति गति' बताई, क्योंकि वहाँ जाने पर पुनः आना नहीं होता, गया सो गया। बाकी ये चार गति हमने संसारी जीवकी बताई हैं पर ये यथार्थ गतियाँ नहीं हैं, क्योंकि इनमे गतिके साथ आगति भी है अर्थात् वहाँ जाकर जीव पुनः दूसरी योनिमें लौटता है। इसलिये आपके द्वारा बताई गति पक्की है और हमारी बताई गतियाँ पक्की नहीं हैं। पर संसारी जीवके लिए ये ही चार गतियाँ है, मुक्त जीव की एक ही गति है।

दाऊजी अपनी इस महान् विजय पर बहुत खुश थे और वर्षों जनतामें इसका डंका पीटते रहे।

कटनीसे हमारे तत्कालीन विद्यागुरु श्री पं० बाबूलालजी हमारे सहयोगी दो छात्र लक्ष्मीचन्द, फूलचन्द को साथ लेकर गुरुजीके साथ रायपुर गए थे। पं० गोपालदासजीका प्रत्यक्ष परिचय इस विमानोत्सवमें हमारे पूज्य पिताको हुआ था। वे गुरुजीसे अत्यन्त प्रभावित थे।

## कटनी विद्यालयकी प्रगति

कटनीमें उस समय जैन पाठशाला चलती थी। विद्यार्थी संस्कृतका अध्ययन करते थे। उन्हे लौकिक ज्ञान भी देना आवश्यक है, ऐसा सुझाव गुरुजीने दिया। शालाके मन्त्री श्री स्व० जीवराखनलाल, रिटायर्ड डिपुटी इंस्पेक्टर द्वारा यह ज्ञात कर कि शालामें फंडकी कमी है, पण्डितजीने स्थानीय सज्जनोंसे उसकी पूर्तिके लिए अपील की।

गुरुजीकी अपील पर श्रीमती राधाबाईजीने एक मकान शालाको दिया जो ५२००) में उस वक्त बेच दिया गया था, वह रकम आज भी शालाके ध्रुव कोषमें 'राधाबाई जैन शिक्षा ट्रस्ट' के नामसे जमा है। दूसरे सज्जन थे स०

सि० कन्हैयालाल गिरधारीलालजी, जिन्होंने उस समय एक मकान जिसकी कीमत ३०००) आंकी जाती थी, वह तथा २०००) नगदीका ट्रस्ट-डीड संस्थाके लिए लिख दिया। यह मकान आज १०, १५ हजारकी कीमतका है और यह सम्पत्ति 'स० सि० कन्हैयालाल रतनचन्द वगैरह जैन शिक्षा ट्रस्ट, कटनी' के नामसे संस्थाके, ध्रुव-कोषमें सुरक्षित है। इस तरह अनायास ही अपने डेपुटेशनमें पटनी संस्थाकी सहायताकर गुरुजी आगे बढ़े।

## दक्षिण प्रांतीय सभाके अध्यक्ष

सन् १९१२ में दक्षिण प्रान्त 'बेलगांव' में दक्षिण महाराष्ट्र सभाका विशिष्ट अधिवेशन था। गुरु गोपालदासजी उसके सभापति चुने गए थे। एक भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तमें हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ जनताके बीच उत्तर प्रदेशके हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान्‌का सभापति चुना जाना एक आश्चर्यकी बात थी।

मैं पिताजीके साथ दक्षिण तीर्थ 'जैनबद्री'की यात्राको गया था। मेरी उम्र ११ साल की थी। छोटी उम्र होने के कारण तथा मातृ-भ्रातृ विहीन होनेसे अपने पिताका एक मात्र पुत्र होने के नाते मैं उनके साथ २ रहता था। यद्यपि वे गृहत्याग कर ब्रह्मचर्य प्रतिमारूढ़ थे तथापि मेरी उपस्थिति उनके मार्गमें एक बहुत बड़ी बाधा थी, तो भी वे मेरा निर्वाह करते हुए अपने व्रतोंका पालन करते थे। अनायास आरसीकेरीमें पिताजी बीमार हो गए, १॥ माह बीमार रहे, एक उपाध्यायने उनकी अच्छी परिचर्या की। स्वास्थ्य संभलते ही वे बेलगांवमे होनेवाली उस महासभामें सम्मिलित हुए। श्री अर्जुनलालजी सेठीका नाम जैन समाजमें प्रख्यात था। गुरुजीके साथ वे भी आए थे।

## अभूतपूर्व स्वागत

पूनासे बेलगांव तक काफी बड़ा रास्ता है, करीब २० स्टेशन पड़ते हैं। दक्षिण भारतकी जैन जनता स्टेशन २ पर अपने नेताके पुण्य स्वागतके लिए आंखें बिछाये खड़ी थी, जहाँ भी गाड़ी पहुँचती—प्लेटफार्म भीड़से भर जाता तथा पुष्पोंकी कलियोंसे बिध जाता। रेलवे गार्ड, ड्राइवर आदि कर्मचारी इस अपरिचित नेताके विशिष्ट परिचयसे चकित थे।

बेलगांवमें प्रान्तकी जैन जनता उमड पड़ी थी। विशाल पैमाने पर गुरुजीका स्टेशनसे पंडाल तक अभूतपूर्व स्वागत हुआ। अपनी छोटी उम्रमें देखे हुए वे दृश्य आज भी मानस-पलट पर चित्रसे अंकित हैं। मुझे नाम आज भी स्मरण नहीं है, एक वृद्ध वकील थे, गुरुजीके चरणोंमें गिर पड़े, देखकर सब लोग स्तम्भितसे हो गए।

## मंच पर मैं और मेरे पिता

अधिवेशन हो रहा था। विशाल पंडाल था, ऊँचा मंच था। तब सभाओंमें लाउड स्पीकर नहीं चलते थे, शायद उस समय तक उनका आविष्कार न था और हो भी तो सर्वसाधारणमें प्रचलन नहीं था। अतः मंचस्थ व्यक्तिको देखने और भाषण सुननेके लिए आगे बैठने तथा बढ़नेकी होड़ सी मच जाती थी।

मेरे पिताजी ब्रम्हचारी व्रती श्रावक थे, इसलिये मंच पर ही बैठनेको स्थान मिल गया था, इस नाते मैं भी उच्च स्थान पर था और गौरवका अनुभव करता था कि हम भी गणनीय व्यक्तियोंमें हैं। मेरी भी इच्छा हुई कि जब मंच पर स्थित सभी लोग दूसरोंको उपदेश देते हैं तो हमें भी देना चाहिए। मैंने पिताजीसे कहा कि हम भी भाषण देंगे। पिताजीने कहा कि यह बच्चोंकी सभा नहीं है। मैंने कहा कि हम अब बच्चे नहीं रहे, यदि बच्चे होते तो मंच पर कौन बैठने देता? वे हँसने लगे। श्री अर्जुनलालजी सेठी पास ही बैठे थे, मैं उनके पास गया। यद्यपि मैं उनसे प्रत्यक्ष नहीं पर परोक्षमें उनके नामसे परिचित था।

सेठीजीसे परिचय इस प्रकार था कि जयपुरमें एक 'जैन शिक्षा समिति' सेठीजीने स्थापितकी थी, जो जैन पाठशालाओंकी धर्म विषयकी परीक्षा लेती थी। सेठीजी उसके मंत्री थे। हमने कटनीमें पढ़ते समय जैन प्रथम पुस्तककी परीक्षा दी थी। हमारे प्रमाण पत्र पर अर्जुनलाल सेठीके हस्ताक्षर थे। बस, मैं सेठीजीसे घनिष्ट सम्बन्ध मनमें स्थापित कर चुका था, अतः निभय उनके पास चला गया। मैंने अपनी इच्छा जाहिर की, वे बड़े प्रसन्न हुए—बोले, एक कागज पर अपना व्याख्यान लिखलो और फिर खड़े होकर पढ़ देना।

## बृहत् सभामें मेरा भाषण

मैंने ऐसा ही किया। प्रारम्भमें णमोकार मंत्र फिर चौबीस भगवानके नाम, उनके चिन्ह, बिनती और जीव अजीवके भेदवाले पाठ सब लिख लिए। हमारे पिता प्रतिदिन सामायिकके अन्तमें 'परमार्थ जकड़ी पढ़ते थे, जो सुनकर

मुझे करीब-करीब कंठस्थ हो चुकी थी, यह सब एक साथ पढ़नेका संकल्प कर मैं तैयार हो गया। गुरुजीसे आज्ञा लेनेको सेठीजीने मुझे भेजा। मैंने गुरुजीसे प्रार्थनाकी। वे ऊँचा सुनते थे, मेरी प्रार्थना उन्हें उच्च स्वरसे सुना दी। उनकी स्वीकृति पाकर मुझे टेबिल पर खड़ा कर दिया गया और मैंने सभी पठित धर्मशास्त्र खड़े होकर सभामें सुना दिए।

## गुरुजीका शिष्यत्व

जनता तो कुतूहलवश प्रसन्न होती थी पर गुरुजी भी प्रसन्न हुए। मेरे पिताका परिचय लिया और उनसे मोरेना आनेका आग्रह किया। कालान्तरमें मेरे पिता मुझे साथ लेकर मोरेना गए। वहाँ उन्होंने 'श्री गोम्मटसार' जीवकांड और कर्मकांडका गुरुजीके पास अध्ययन किया। मैंने भी पढ़ना चाहा तो 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' के १० श्लोक पढ़ाये इसके बाद बोले 'मथुरा चौरासी पर महासभाकी ओरसे महाविद्यालयका पुनः उद्घाटन हो रहा है। तुम इस बालक को वहाँ पढ़ने भेज दो।' पिताजी मुझे मथुरा भरती करा आए जहाँ मैं पढ़ने लगा।

वहाँ एक वर्ष पढ़कर मैं कटनी लौट आया और यहाँ पाठशालामें 'तत्वार्थसूत्र' तक पढा। १५ दिसम्बर सन् १९१५ को मैं अपने पूर्व संस्कारवश उत्पन्न बलवती इच्छासे मोरेना अध्ययन करनेको गया। गुरुजीके दर्शन तो किए पर उनसे पढ़नेका प्रसंग फिर नहीं आया। उनके शिष्यवर्गमें श्री न्यायालंकार पं० बंशीधरजी, व्याख्यान वाचस्पति पं० देवकीनन्दनजी, और न्यायाचार्य पं० माणिकचन्दजी, तब अध्यापन करते थे। विद्यालयका भवन बनता जाना था। उक्त गुरुओंके पास विद्याध्ययन किया।

गुरुजी शरीरसे कुछ कमजोर थे, बीमारी प्रायः घेरे रहती थी तथापि कभी-कभी विद्यालयमें होनेवाली पाक्षिक सभामें भाषण देने आ जाते थे। सुबह शाम वे घूमकर आते तो विद्यालयके प्रांगणमें खाट बिछाकर नीमके नीचे बैठ जाते। हम सब बालक बड़े उल्लाससे उन्हें घेर लेते थे।

## स्नेह तथा स्फूर्ति प्रदान

वे हम सबसे प्रश्न करते थे कि क्या पढ़ते हो, पढ़कर धर्मकी क्या सेवा करोगे, प्रत्येक जैन विद्यार्थीका क्या कर्तव्य है, अकलंक निकलंक कौन थे, उन्होंने क्या कार्य किया था, समन्तभद्राचार्य स्वामीने जैनधर्मकी कैसी प्रभावनाकी थी। तुम भी ऐसे ही न्यायवादी तथा धर्मसेवी बनो। इत्यादि उनकी प्रश्नावलियाँ छात्रोंमें स्फूर्ति प्रदायक होती थी।

## माँजीकी नाराजी

एक बार गुरुजी आगरामें थे, तबियत ज्यादा खराब हुई। तार आया तो पं० बंशीधरजी हम २४ छात्रों सहित आगरा पहुँचे। माताजी हम सबको देखते ही कुपित हो गई—बोलीं, ये सेना काहेको बुलाई है? गुरुजी समझ गए—बोले, ये देखने आए हैं, बाजारसे खा लेंगे, तू इनकी चिन्ता न कर।' कुछ भी हो, क्रोध का विष जब एक बार चढ़ता है तो जल्दी नहीं उतरता। हम सब लोग स्नानादिसे निवृत्त हो मंदिरजी गए, तब तक माँजीने गुरुजीकी खाट कोठेमें उठवाकर बाहिर कर दी। जब हम सब वापिस आए और यह दुर्दशा देखी तो माँजीके चरण पकड़े और मनाया कि गुरुजीकी खाट भीतर कर लेने दो, स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। माँजीको जब हम लोगोंने बताया कि हम सब खाना साथ लाए थे और खा चुके हैं तब माँजीका पारा उतरा और शीघ्र ही खाट कोठेके अन्दर रख दी गई।

हम लोग लौट आए पर स्वास्थ्य नहीं सुधरा। गुरुजी मोरेना वापिस आ गए। इनके बालसखा अत्यन्त प्रेमी सहयोगी थे श्री प्रेमराजजी मुनीम। इनका सब काम लगनसे करते थे, यही कारण था कि गुरुजी पठन-पाठनका समय पा जाते थे। गुरुजीकी इस धर्मसेवामें प्रेमराजजीकी यह बहुत बड़ी सहायता थी। वे गुरुजीको और गुरुजी उनको बहुत मानते थे।

## अन्त समय

मोरेनामें स्वास्थ्य खराब होता गया। हम छात्रोंकी पारी बांधी गई। दिन और रातमें कमसे कम २ विद्यार्थी उनकी सेवामें हाजिर रहना ही चाहिए। हमें भी ड्यूटी मिलती थी। एक दिन हमारी पारी रात १२ से ३ बजे तक थी, एक छात्र हमारे साथ थे—मोरेनाके ही थे इनका नाम मुझे विस्मृत हो गया, गत वर्ष ग्वालियरमें ही मिले थे, वही आज-कल व्यापार करते हैं।

ज्योंही हमारी ड्यूटी पूरी होने आई कि गुरुजीने पुकारा कौन है, मैं सामने आया वे बोले, क्या अब तुम्हारा नम्बर है? मैंने कहा—नहीं मेरा और इनका समय पूरा हो रहा है, थोड़ी ही देरमें दूसरे छात्र आयेंगे।

## समाधिकी चिन्ता

गुरुजीने अपना समय जान लिया था, अतः समय खराब न करनेकी गरजसे बोले, देखो। हमें नींद नहीं आती यही तो बीमारी है, यह तो तुम जानते हो। मैंने कहा, 'जी हाँ! यदि आपको नींद आने लगे तो बीमारी जल्दी अच्छी हो सकती है, ऐसा वैद्य लोग कहते हैं। बोले हाँ, ठीक बात है। तुम्हे आज खुश होना चाहिये कि हमें अब नींद आ रही है। ऐसा न हो कि मुझे नींद आजाय, और कोई आकर जगा दे। इसलिए तुम अपनी ड्यूटी परसे न जाना, सुबह तक खुद दोनों रहना। अब तुम बाहिरसे सांकल लगालो। एक चटाई पास रखवालो और पुनः बोले—याद रखो, किसीको भी भीतर न आने देना, नहीं तो मेरी नींद भंग हो जायगी और फिर बीमार पड़ जाऊँगा।

हमें भी इससे प्रसन्नता हुई। हम दोनों लाठी हाथमें लेकर दरवाजे पर अड़ गए। किसीको अन्दर नहीं जाने दिया। प्रातः ६ बजे प्रेमराजजी आए, बोले कि सांकल क्यों लगा रखी है? हमने सब समाचार सुनाए। सांकल खोलने लगे, हम सामने आ गए—वे रुक गए। पर १ घन्टे बाद पुनः आए और बोले, धीरेसे देखने तो दो, निद्रा भंग नहीं होगी। हमने बड़ी हठके बाद उनकी बात मानी। प्रेमराजने धीरेसे सांकल खोलकर देखा तो बड़े दुखी हुए। गुरुजी पलंगके नीचे एक चटाई पर बिलकुल नग्न पड़े है। आखें पथरा गई हैं, हाथ-पाँव कड़े पड़ गए हैं। जीवितावस्थाके कोई लक्षण शेष नहीं है।

रोने लगे। शीघ्र ही उठाकर पलंग पर पाड़ दिया, कपड़े ढका दिए। हम कोई रहस्य नहीं समझ पाए। समाचार फैल गया, विद्यालयसे सभी आए। सबने देखा पलंग पर गुरुजी पड़े हैं, शरीर लकड़ीकी तरह है। समझा कि रात रात पड़े-पड़े प्राण निकल गए, दाह संस्कार हुआ। प्रेमराजजीने हिदायत कर दी थी कि सबेरेकी बात किसीको न बताना। फलतः उनका हमसे वार्ता करना, चटाई मंगाना व नग्नावस्थामें शरीरान्त होना रहस्य और गोप्य बना रहा।

## दि० मुनि अवस्थामें देहावसान

जब समझदारी आई तब कभी-कभी सोचता हूँ कि वह कौनसी नींद थी जो उस दिन आ रही थी। चटाई किसलिए मंगाई, उस पर क्यों लेटे, नग्न कैसे हो गए। सबको आनेसे क्यों रोक दिया। आज समझ पा रहा हूँ कि उन्हे यह भय था कि किसीके आनेसे हल्ला पड़ जायगा और उनकी समाधि नहीं सुधरेगी। वे अपना अन्त समय जान चुके थे और उन्होंने अपने समाधिमरणकी तैयारी उस समय स्वयंकी थी, और सर्व परिग्रह त्याग कर ही नग्नावस्थामें समाधिपूर्वक प्राण विसर्जन किए थे।

श्री प्रेमराजजी समाधिमरण नामकी वस्तुसे परिचित न थे। हम लोग भी पुस्तकोंमें कुछ-कुछ पढ़े थे पर प्रत्यक्षीकरण कभी नहीं किया था। प्रेमराजजीसे डरते थे, इस वास्ते दूसरोंसे भी कुछ नहीं कह सके। अतः उनकी मुनि दशा और समाधि आज भी रहस्यमें छिपे है।

हमें प्रत्यक्ष परिचय गुरुजीका जितना प्राप्त था उसे ही लेखबद्ध किया है। सुनी हुई बातें बहुत-सी है पर उन्हें कोई प्रत्यक्ष दृष्टा ही लिखे, इस अभिप्रायसे नहीं लिखा।

सारांशमें यह कहा जा सकता है कि गुरु गोपालदासजी अपने समयके इतने महान् व्यक्ति थे कि उनकी महत्ता महान् पुरुष ही आँक सकते हैं, हम जैसे क्षुद्र जीव नहीं।

●

# अविस्मरणीय संस्मरण

बा० नेमीचंद जैन, एडवोकेट, मोरेना

●

स्व० गुरु गोपालदासजीसे मेरा पूरा कुटुम्ब उपकृत हुआ है। मेरे दोनों बड़े सहोदर भाई पं० बंशीधरजी ( शोलापुर ) और पं० खूबचन्दजी तो उनसे पढ़े ही थे, मैं भी गुरुजीसे लगभग सालभर पढ़ा था। पश्चात् मेरा मोरेना आना जाना बना ही रहता था, उसी समयके ये कुछ संस्मरण हैं। इन्हीं संस्मरणोंके रूपमें मैं स्व० पूज्य गुरुजीके चरणोंमें अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ तथा अपने दोनों ही दिवगंत भाइयोंकी तरफसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

## खूबा ! हैजा बैरागी

गुरुजीके हृदयमें जैन समाज और जैनधर्मको उन्नत करनेकी भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। निम्नलिखित घटना वर्तमान शताब्दिके प्रथम दशक की है। उत्तर भारतवर्षमें जैन मुनियोंके दर्शन तक नहीं होते थे। दक्षिण भारतमें कुछ जैन मुनियोंका अस्तित्व अवश्य था, परन्तु उनका सैद्धान्तिक ज्ञान इतना कम था कि वह जैनधर्मकी उन्नतिमें सहायक नहीं हो सकता था। अतएव गुरुजी एक ऐसा व्यक्ति चाहते थे जो विद्वान् होनेके साथ-साथ गृहस्थीकी झंझटसे सर्वथा मुक्त हो, जिसका व्यक्तित्व प्रभावक हो, जिसकी वाणीमें ओज हो और जिसकी तर्कणाशक्ति अकाट्य हो। वे अनेक बार कहते सुने गये कि ऐसा व्यक्ति ही जैनधर्म व समाजकी उन्नति कर सकेगा। उनकी दृष्टि अपने शिष्य खूबचन्द्र पर पड़ी, क्योंकि उक्त सभी गुण उनमें मौजूद थे।

उस समय तक पं० खूबचन्द्रजीका विवाह नहीं हुआ था। अतः गुरुजीने उनसे बार-बार आग्रह किया कि तुम अपना विवाह मत करो और जैन सिद्धांतकी उन्नतिमें लग जाओ, परन्तु पं० खूबचन्द्रजी इस बातको स्वीकार नहीं करते थे।

उन दिनों मेरे बड़े भाई पं० बंशीधरजी ( शोलापुर ), पं० खूबचन्द्रजी और मैं मोरेनामें ही थे। हमने एक मकान किराये पर ले रखा था और हमारी माँ हमारे लिये खाना बनाती थीं, क्योंकि उस समय तक मोरेना विद्यालयकी कोई कल्पना तक उत्पन्न नहीं हुई थी। अतएव पढ़नेवाले छात्रोंको अपने भोजनकी व्यवस्था स्वयं ही करनी पड़ती थी। एक दिन ठीक भोजनके समय गुरुजी अकस्मात् हमारे घर पर आ गये और हमारी माँ से बोले 'माँ जी, मैं आपसे एक चीज मांगने आया हूँ। हमारी माँ एकदम सिटपिटा गई और बोली 'पंडितजी, मैं आपको क्या दे सकती हूँ, मेरे पास तो सिवाय मेरे लड़कोंके और कुछ है ही नहीं।' गुरुजी तत्काल बोल उठे कि बस, आपका एक लड़का मुझे चाहिये। माँ ने उत्तर दिया कि मेरे तीन लड़के तो आपकी ही सेवामें मौजूद हैं। इनमेंसे आप चाहे जिसको ले लीजिये, मुझे कोई आपत्ति नहीं, लड़के तो आपके ही हैं। इस उत्तरको सुनकर गुरुजी बहुत सन्तुष्ट हुये और तत्काल हमारी माँको प्रणाम करके अपनी दुकानको चले गये। हम तीनों भाई आश्चर्यचकित होते हुए सुनते रहे और गुरुजीकी इस बातका फलितार्थ निकालनेमें असमर्थ रहे।

भोजन करके जब पं० खूबचन्दजी पढ़नेके लिए गुरुजीकी दुकान पर गये तो गुरुजी एक लोढ़के सहारे टिके हुए इस प्रकार गुनगुना रहे थे मानों उन्होंने खूबचन्दजीको देखा ही न हो। खूबचन्द्रजी दूसरी गद्दी पर बैठ गये लेकिन गुरुजी धीरे धीरे एक 'रसिया' गाते रहे। दुर्भाग्यसे गुरुजीका वह पूरा गाना याद नहीं रहा है, उसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

**खूबा ! है जा बैरागी, तेरे सब घरके राजी।**
**भैया राजी, मैया राजी, अब तो तू है जा राजी।**
**......खूबा है जा बैरागी ॥**

खूबचन्द्रजीने पूछा—पंडितजी क्या गा रहे हैं ? मुनीम प्रेमराजजी और रामस्वरूपजी भी हँस रहे थे। पंडित जीने उत्तर दिया—अरे, तेरे ही लिये तो यह गाना बनाया है। आज तेरे ही सामने तेरी माँने तुझे मेरे अधीन कर दिया है, अब तो तू इन्कार कर ही नहीं सकता। आज मेरे सामने प्रतिज्ञा कर कि तू कभी विवाह न करेगा। खूबचन्द्रजीने दुर्भाग्यवश गुरुजीके आग्रहको न माना, परन्तु यह प्रतिज्ञा अवश्यकी कि मैं दूसरा विवाह न करूँगा और अव्रत अवस्थामें मरूँगा भी नही।

## जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

गुरुजीके पास हमेशा ही कुछ ऐसे महानुभाव रहा करते थे जो घरसे उदासीन रहते हुए धर्मध्यानपूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया करते थे और गुरुजीसे कुछ धर्मशिक्षण भी लिया करते थे। यह बात भी मोरेना विद्यालयकी स्थापना से पूर्वकी है। आगरासे लाला घनश्यामदासजी सर्राफ, बाबा ठाकुरदासजी वर्णी ( बादमें दशम प्रतिमाधारी ) और देहली के लाला मोतीलालजी शासकीय सेवासे निवृत्त हो चुके थे। उनको हिन्दी भाषा और हिन्दी लिपिका परिज्ञान नहीं था। वे फारसी एवं उर्दूके अच्छे विद्वान थे और उर्दू लिपिमें ही वे लिखा करते थे और उच्चारण भी उनका उर्दूवालों सा ही था। गुरुजी ला० मोतीलालजीको 'बैरिस्टर' नामसे सम्बोधित किया करते थे। उनको गुरुजी कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ाते थे अपितु ऐसे शब्दोंका अर्थ बताया करते थे जो जैनशास्त्रोंमें हर जगह आया करते थे। मोतीलालजी उन शब्दोंको प्रश्नरूपसे लिख लिया करते थे और उत्तर भी उर्दू लिपि में ही लिख लिया करते थे। कुछ दिनों बाद गुरुजीने विचार किया कि यदि ये प्रश्नोत्तर हिन्दीमें लिख लिये जाँय और उनको पुस्तकाकारमें छपवा दिया जाय तो ये बहुतोंको लाभदायक सिद्ध हो सकते है।

उन दिनों मैं भी मोरेनामें ही पढ़ता था। मेरे लिए मेरे बड़े भाई पूज्य पं० बंशीधरजी ( शोलापुर प्रवासी ) 'जैनेन्द्र प्रक्रिया' तैयार किया करते थे और मुझे उसे ही पढाया करते थे, साथ ही साथ मैं गुरुजीसे 'स्वामी कार्तिकेया-नुप्रेक्षा' भी पढ़ा करता था। मेरी हस्तलिपि गुरुजीको बहुत पसन्द थी, इसलिए गुरुजीने एक दिन मुझसे कहा कि नेमीचन्द ! तू इन प्रश्नों और उत्तरों को हिन्दी लिपिमे लिख दिया कर। बैरिस्टर साहब ( मोतीलालजी ) बोलते जाया करेंगे और तू लिखते जाना। दूसरे दिन गुरुजी गद्दी पर बैठे दुकानकी बहियोंकी जाँच कर रहे थे और दूसरी गद्दी पर ला० मोतीलालजी मुझे प्रश्न और उत्तर लिखा रहे थे।

उन्होंने कहा-लिखो 'परमान कितने प्रकारका है ?

'परमान दो प्रकारका है। एक परतच्छ और दूसरा परोच्छ।'

मेरी समझमे कुछ नहीं आया और मेरे दो तीन मर्तबा पूछने पर भी मोतीलालजीने उपर्युक्त शब्द ही दोहरा दिये। गुरुजीका ध्यान हमारी तरफ आकर्षित हुआ और हँसते हुए मुझसे कहा—भई, ये उर्दूदा हैं, तुम यह लिखो—

प्रश्न—प्रमाण कितने प्रकार का है ?

उत्तर—(१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष

इस पर मुझे हँसी आ गई और मोतीलालजी आदि उपस्थित सज्जन भी हँसने लगे।

इन्हीं प्रश्नोत्तरोंको गुरुजीने बादमें पुस्तकाकार छपवा दिया, जिसका नाम 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' रखा गया।

## सुशीला उपन्यास और सुशीला

मेरी सबसे छोटी बहन भी हमलोगोंके पास मोरेनामें ही रहा करती थी। वह उस समय करीब सात वर्षकी थी। उसका नाम बिट्टोबाई था। वह पढने लिखने लगी थी और मामूली पुस्तकें अच्छी तरह पढ लिया करती थी।

गुरु गोपालदासजीने 'सुशीला नामक एक उपन्यास भी लिखा था जिसे बम्बईमें छपवाया गया था। उसकी पार्सल दुकान पर आई और गुरुजीने हम सबके सामने खुलवाया। गुरुजी उपन्यासकी एक प्रति लेकर देखने लगे कि अकस्मात् मेरी बहन बिट्टोबाई घरसे दुकान पर आ गई। गुरुजीने उसे पास बुलाकर अपनी गोदीमें बिठा लिया और उपन्यासकी एक प्रति देकर कहने लगे कि देख, तू इस पुस्तकको अच्छी तरह पढना और इस पुस्तककी सुशीलाकी ही तरह बनना। आजसे तेरा नाम भी सुशीला ही रहेगा। मेरी बहन उस पुस्तकको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसने उस उपन्यासको कई बार पढ़ा और वर्षों तक बड़े स्नेहसे अपने पास रक्खे रही। गुरुजीके आशीर्वादसे वह आगे चलकर बहुत योग्य हुई तथा कई अच्छी-अच्छी परीक्षायें भी उसने पासकी। उसका नाम भी सुशीलाबाई ही रहा !